Chapter-1

प्रथम अध्याय

देश की समसामयिक परिस्थितियों का चित्रण

किसी भी साहित्यकार के कृतित्व का सम्यक् मूल्यांकन करने के लिए उसके समय की राजकीय, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिस्थितियों से पूर्णतया परिचित होना अत्यंत आवश्यक है । इन पक्षों के ज्ञान के अभाव में साहित्यिक व्याख्या अनेक प्रकार से त्रुटिपूर्ण रहेगी । जैसे E.E. Kellet ने लिखा है कि –

"Literary taste like every other human faculty is the Creature of the age, circumscribed by its limitations, stirred by its passions, warped by its defects. It cannot be taken in isolation from the man as a whole. It springs from the soil in which he is born, it breathes the air he breathes, and lives on the food he eats. Like opinion, it alters as we cross the Pyrenees, and like disease, it flourishes in one climate and decays in another. But it cannot too often be repeated that there is, in the strict sense, no spirit of the age. Each man absorbs from his environment something special to himself there is, in the strict sense, no spirit of the age. Each man absorbs from his environment something special to himself, and in turn gives back to something that no other gives. In every age there are many who might seem to belong properly to another, men born out of due time, either too soon or too late. What we call the spirit of the age is a phantasm, a sum attained by a rough and clumsy integration of infinitely small expressions, a delusive and casual composite photograph a mixture from which multitudes of essential

ingrediants are inevitably omitted on such a theme it is impossible to dogmatise every student, selecting his own, materials, will form his own conclusions, and, if wise, will remember that those conclusions, like those of former generations are conditioned by his own environment."

E.E.Kellet

(The Whirlgig of Taste 1929 Edition pps. 27-28)

श्री जयशंकर प्रसाद तथा कवि न्हानालाल दोनों उन्नीसवी शताब्दी के अंतिम भाग और बीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध की देन है। अतः इस युग की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों का विवेचन इस अध्याय में किया जा रहा है।

राजनैतिक परिस्थितियां :

राजनैतिक शक्ति शिथिलता और आर्थिक पराधीनता से उत्पन्न उद्‌बुद्ध चेतना ने असफल स्वातंत्र्य संग्राम (सन् १८५७) को जन्म दिया फलस्वरूप राजनीतिक दृष्टि से कंपनी शासन का अंत और महारानी विक्टोरिया द्वारा (१८५८) में उदार घोषणा से अपेक्षाकृत अधिक शांत और विश्वास का वातावरण बना।

"After the great events, fierce passions, and tremendous problems of the Mutiny we pass into a comparatively mild and humdrum atmosphere."[1]

पर सामाजिक क्षेत्र में सुप्त मनोभावों को जगाने की अदम्य अभिलाषा से प्रेरित सुधार आन्दोलनों का बीजारोपण होने लगा। सैयद अहमद ने इंग्लैंड से लौटने पर "तहजीबुल अखलाक" पत्रिका द्वारा सामाजिक, धार्मिक तथा शैक्षणिक विचारों को

1. History of British India - Roberts, p. 387.

प्रबल रूप में व्यक्त किया । धार्मिक आंदोलनों के आक्षेपों पर प्रत्युत्तर से प्रेरित (१८८५) " अंजुमन-ए-हिमाइत-ए-इस्लाम " तथा १८९४ समाजसुधारक "नदवतुल इस्लाम " संस्थाओं की स्थापना हुई । सुधारक डी० एम० मलबारी तथा दयाराम पारसी समाज में आये । बंगाल में ब्रह्मसमाज, महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज, गुजरात में आर्य समाज तथा उसी वर्ष थियोसोफिकल सोसायटी आदि की स्थापनाएं सांस्कृतिक जागरण की प्रतीक थी । साथ ही साथ उपर्युक्त विचारों से प्रेरित राजनीतिक चेतना क्रमशः संघों से संगठन का रूप धारण कर रही थी । राममोहनराय से प्रभावित उग्र पंथी विचारकों में ताराचन्द चक्रवर्ती (१८०४-१८५५) दक्षिणारंजन मुखोपाध्याय (१८१४-१८७८) ; रसिक कृष्ण मल्लिक (१८-१०-१८५८) आदि ने निर्भिकतापूर्वक शासन की कटु आलोचना की । जब नरमदलीय विचारकों प्रसन्नकुमार, द्वारकानाथ ठाकुर, देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि ने समयानुकूल नीति अपनाने का आग्रह किया ।

एक ओर भारतीय भावनाओं की अभिव्यक्ति तथा दूसरी ओर शासन की आर्थिक शोषण नीति तथा दैवी प्रकोपों से स्थिति अधिक दयनीय होती गई । डा० ईश्वरीप्रसाद के शब्दों में " १८६० ई० में पश्चिमोत्तर प्रांत एवं अलवर राज्य में, १८६६ से १८६७ ई० में कलकत्ता से मद्रास तक सभी समुद्री किनारों पर १८६८ से १८६९ ई० में पंजाब और राजपूताना में १८७३ में बिहार में, १८७६ से १८७८ ई० में मद्रास, मैसूर, हैदराबाद, बम्बई तथा अवध में, १८८० से १८९६ ई० में सम्पूर्ण देश में तथा १८९६ से १८९७ ई० में अवध, बिहार, मध्य भारत, मद्रास, बम्बई तथा पंजाब में अकाल पडे ।[१]

यहां यह स्मरणीय है कि सन् १८५७ स्वतंत्रता संग्राम तथा उसमें होनेवाली सरकारी दमन का प्रभाव उत्तर भारत और यत्किंचित गुजरात तथा महाराष्ट्र पर आगे चल कर पडा । उसके महान संचालक तात्या टोपे का कार्यक्षेत्र कानपुर, झांसी, ग्वालियर और महाराष्ट्र की कुछ रियासतें ही नहीं बल्कि वे गुजरात भी आये थे । यह चिनगारी पूरी तरह से बुझ न सकी । सन् १८५७ ई० के स्वतंत्रता

---

१ भारत का इतिहास, भाग-२, डा० ईश्वरी प्रसाद, पृ० ४९७

संग्राम की असफलता के पश्चात् एक ओर ईसाई मिशनरियों के विरुद्ध उपर्युक्त प्रकार से सुधारवादी प्रयास आरम्भ हुए तो दूसरी ओर छुट-पुट आतंकवादी घटनाएं भी हुईं। वासुदेव बलवंत फड़के के षडयंत्रकारी प्रयत्न तथा फलतः फांसी की घटनाएं इसी बीच हुईं। इस समय देश की राजनीतिक गति-विधियों को अपेक्षित दिशा देने के लिए इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना सर० ए० ओ० ह्यूम ने १८८५ ई० में की। कांग्रेस का आरम्भ में पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति का कुछ वैसा उद्देश्य न था जो कि आगे चल कर हमें दिखाई देता है। सन् १८८५ से १९०० वीं सदी के अंत तक उदारवादियों का समय है, जिनमें रानाडे, नौरोजी, तैलंग, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी एवं गोखले आदि ने मध्यम मार्ग का अनुसरण किया जिसमें विवेक तथा औचित्य पर आधारित नीति को वैधानिक रूप में अपनाने का आग्रह था। इन उदारवादी नेताओं ने " सहयोग और आलोचना " के सिद्धान्त असफल होने पर विक्षोभ बढ़ने की स्थिति में लोगों ने " अनुनय-विनय-नीति " को मृगमरीचिका समझ भविष्य के लिए स्वयं पर विश्वास रखने का आदर्श प्रस्तुत करने का अनुभव किया।[१]

इस प्रकार बढ़ते हुए असंतोष से १९१२ ई० तक राजनीतिक क्षेत्र में अधिक चेतना आ गई। लार्ड कर्जन की अनीतिपूर्ण नीति आग में घी का काम कर रही थी। भारतीयों को उपेक्षित कर (१९००) शिमला में शिक्षा सम्मेलन, शृंखला-बद्ध दुर्भिक्षों के पश्चात् भी लार्ड कर्जन ने (१९०२) एडवर्ड सप्तम् की राजगद्दी के उपलक्ष्य में अत्यधिक सर्वीले दिल्ली दरबार की आयोजना की; जिसकी भर्त्सना (१९०३) लाला मोहनघोष द्वारा कांग्रेसी अध्यक्षीय मंच से मद्रास में की गई राजनीतिक जागृति के दमन हेतु (१९०४) युनिवर्सिटी एक्ट तथा चीन वॉअर युद्ध में भारतीय सैनिकों का प्रयोग आदि घटनाओं ने भारतीयों के सन्देह को इस विश्वास में बदल दिया कि अंग्रेजी नीति भारतीय धन एवं जन की इच्छाओं के अनुकूल न हो कर अपने लाभ तथा हित साधना एवं उसके विस्तार के लिये है। सन् १९०४ में जापान

---

१ Renascent India - Acharya, p. 146.

जैसे छोटे देश ने रूस पर विजय पा ली, जिसका प्रभाव भारत के मानस पर भी पड़ा। लोगों के भीतर आशा और विश्वास की एक लहर उठी। उसी समय सन् १९०५ में काशी में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ ; जिसमें तिलक ने स्पष्ट रूप से घोषित किया कि " स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार हैं "। कांग्रेस में राष्ट्रीय तत्त्वों को बल मिलने लगा।[१]

राष्ट्रीय चेतना की गति को अवरुद्ध तथा बंगाली संस्कृति को छिन्न-भिन्न करने के लिये (१९०५) हिन्दू मुसलमानों में भेद पर आधारित कर्जन की बंगभंग नीति से सारा देश तिलमिला गया। समस्त देश में सभाओं एवं जुलूसों के रूप में प्रतिक्रियाएं होने लगीं। बनारस कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष (१९०५) गोखले द्वारा समर्थित मालवीयजी एवं लाजपतराय का विदेशी वस्तु बहिष्कार का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी तथा विपिनचन्द्र पाल ने इस राजनीतिक आंदोलन को बंगाल में धार्मिक प्रतीकों के द्वारा आध्यात्मिक रूप दिया। कलकत्ता कांग्रेस के (१९०६) अध्यक्ष दादाभाई नौरोजी के ओजस्वी भाषण में शासन की स्वार्थी नीति और शिक्षित भारतीय भावनाओं के अनादर पर खेद प्रकट करते हुए कांग्रेस की आलोचना नीति का त्याग तथा बहिष्कार को वैधानिक आंदोलन के रूप में स्वीकार किया गया। विपिनचन्द्र पाल तथा बालगंगाधर तिलक ने ब्रिटिश माल के साथ सरकार का भी बहिष्कार करने और स्वदेशी शासन की स्थापना के भाव को प्रस्ताव में जोर देने का असफल प्रयत्न करने से गरम तथा नरम दलों में विरोधी विचारों की खाई अधिक चौड़ी हो गई। पर कांग्रेस का लक्ष्य शासन सुधार से स्वराज्य हो गया। दोनों दलों में विचारों की अति से सूरत अधिवेशन (१९०७) में उत्पन्न विकृति से लाभ उठाने के लिए सरकार ने दमन और मिन्टो मार्ले सुधार लेकर उदारवादियों को प्रसन्न करने की नीति अपनाई। मिन्टो मार्ले सुधार का देशभर में विरोध हुआ। बंगाल की ही भांति गुजरात के अनेक नवयुवकों ने आतंकवादी प्रवृत्ति अपनायी। सन् १९११ ई० में अहमदाबाद में लार्ड मिन्टो पर बम्ब फेंका गया। सिपिनसम एक्ट (१९०७) से

~~१ भारत का इतिहास, डा० ईश्वरी प्रसाद, भाग-२, पृ० ५५०~~

१ डा० सुधाकर पाण्डेय, प्रसाद की कविताएं, पृ० ३०

समाएं राजद्रोही तथा न्यूज पेपर्स एक्ट (१९०८) के द्वारा तत्कालीन प्रगतिशील पत्र वंदेमातरम् केसरी, युगान्तर, सन्ध्या आदि बंद हो गये।[1] तिलक को ६ वर्ष की मांडले में जेल हुई। विपिनचंद्र पाल को ६ मास का कठोर कारावास, चिदाम्बरन् पिल्लई को ६ वर्ष तथा हसरत मुहानी को एक वर्ष का कारावास हुआ।[2]

उपर्युक्त घटनाओं से देश में क्रान्ति की लहर दौड गई। कूटनीति से पूर्ण मिन्टो मार्ले (१९०९) के सुधारों में जहां एक ओर जिला स्तर से लेकर कौंसिलों तक चुनाव का विधान था तो साथ ही मुसलमानों को पृथक निर्वाचन अधिकार की सुरक्षा से भेद की दीवार भी खडी हो गई थी जो सैयद अहमद के अनुयायियों द्वारा अनुमित मुस्लिम लीग को बल देने वाली थी, जिसके प्रति मद्रास अधिवेशन में असंतोष और लाहौर अधिवेशन में कटुतम आलोचना की गई। जिसकी अभिव्यक्ति सामयिक साहित्य में यत्र तत्र तीव्र रूप में देखी जा सकती है तथा इस उठते हुए ज्वार को शांत पंचम जार्ज द्वारा घोषित घोषणा " (बंगाल एक तथा दिल्ली देश की राजधानी होगी) से किया गया। लार्ड हार्डिंज की सहनशील तथा समझौतावादी नीति से वातावरण में कुछ शान्ति अवश्य आई पर देश-नेताओं की कटुता को मिटाने के लिये भी प्रयत्न होने लगे। सन् १९१४ में विश्व युद्ध आरंभ होने पर कांग्रेस को सरकार का साथ देने के उपलक्ष्य में स्वराज्य प्रदान का आश्वासन मिला था। पर युद्ध समाप्ति पर जनता को अमानवीय दमन तथा कठोर कानूनों का उपहार मिला। खिलाफत के प्रश्न मामले पर मुसलमानों का संतोष तथा रालेट एक्ट द्वारा भारतीयों की प्रारंभिक नागरिकता के अधिकारों की समाप्ति दोनों से प्रेरित समस्त राष्ट्र क्रांति की ज्वाला में प्राणाहुति देने के लिये कूद पडा। बीसवीं सदी के ~~अमर्म~~ आरंभिक १० वर्ष उच्च मध्यम वर्ग में असंतोष और धैर्य की समाप्ति का काल है। १९१४ ई० में श्रीमती एनीबिसेन्ट द्वारा होम रूल की स्थापना तथा कांग्रेस में प्रवेश महत्त्वपूर्ण घटना है। तिलक की मृत्यु के पश्चात् आफ्रिका से गांधीजी के आगमन (१९१९) से पूर्व की

---

१ भारत का इतिहास, डा० ईश्वरी प्रसाद, भाग-२, पृ० ५५०

२ छायावाद युग, शंभुनाथ सिंह, पृ० ६

बुद्धिजीवियों की कांग्रेस उनके नेतृत्व में विशुद्ध जनवादी संस्था बन गई। कुछ थोड़े से व्यक्ति मुहम्मद जिन्ना आदि प्रगतिशील जनवादी विचारधारा को अपनाने में असमर्थता के कारण पृथक भी हो गये।[1] एक ओर लार्ड हार्डिंज (१९१२) पर बम्ब फेंकने की घटना से लेकर आजाद भगतसिंह तथा हरदयाल आदि कुछ क्रांतिकारी शस्त्र बल का प्रयोग कर रहे थे ; तो दूसरी ओर सत्य, अहिंसा, असहयोग तथा सत्याग्रह देश को शक्ति प्रदान कर रहे थे। राजनीतिक क्षेत्र में सहयोग अस्त्र का मुख्य और दार्शनिक रहस्य प्रकट होने के लिये, उसका प्रयोग आत्मबल को सर्वोपरि माननेवाले महात्मा के संरक्षण और उसके नेतृत्व को जनता ने राजा मान लिया। The slogan " महात्मा गांधी की जय " began to dominate the Indian Political horizon.[2] गांधीजी ने नीति तथा वैधानिकता का अनुसरण कर जातीय पार्थक्य की समाप्ति के प्रयत्नों से ऐसा शमा सारे देश में बंधा कि " अब दोनों जातियों के नेता बस इसी एकता की रट लगाये हुए थे। वह मात्र भाव का एक अद्भुत दृश्य था - कांग्रेस तथा देश दोनों के लिये गांधीजी बहुत मान्य हो गये।[3]

सन् १९१७ ई० से १९४७ ई० तक का समय राजनीतिक दृष्टि से गांधीयुग है। यद्यपि गांधीजी का प्रथम सत्याग्रह गुजरात के प्रसिद्ध स्थान वीरमगाम से आरम्भ हुआ, किन्तु वे शीघ्र संपूर्ण देश के नेता बन गये। गांधीजी का रालेट एक्ट के विरोध में प्रथम अवज्ञा आंदोलन असफल हुआ। इसी समय जलियांवाला हत्याकाण्ड तथा टैगोर द्वारा नाइटहुड की पदवी लौटाने के लिये वाइसराय ने पत्रव्यवहार आदि से देश का असंतोष और नैराश्य झलकता है। पर गांधीजी में लोगों का दृढ विश्वास बना रहा। सन् १९२० में चौरी-चौरा काण्ड में हिंसात्मक उपायों के प्रयोग से गांधीजी ने आंदोलन समाप्त कर दिया। सन् १९२७ सायमन कमिशन तथा कांग्रेस द्वारा अन्य संस्थाओं के सहयोग से " डामिनियन स्टेटस " का विधान बना। सन् १९३५ में

---

१ कांग्रेस का इतिहास, पट्टाभिसीतारामैया, प्रथम खण्ड, पृ० १३१

2. The Discovery of India, Pt. Jawaharlal Nehru, p.431.

3. An Autobiography by Nehru, p.41.

लाहौर कांग्रेस में शांतिपूर्ण उपायों से पूर्ण स्वराज्य का लक्ष्य घोषित किया। सन् १९३० में सिविल डिसओबिडियन्स मुवमेन्ट के समय भारत से कुछ प्रमुख व्यक्तियों को इंग्लैंड बुलाया गया। सन् १९३१ में गांधी-इरविन समझौते से दमनात्मक कानूनों को सरकार द्वारा हटा लिये जाने से आंदोलन की समाप्ति तथा इसी वर्ष अंतिम दिनों में गांधीजी द्वारा इंग्लैंड में " राउन्ड टेबल कान्फरेन्स " में भाग लेने पर भी परिणाम शुभ न निकला ; तब लौटने पर उन्होंने आंदोलन आरंभ कर सन् १९३४ तक चलाया। सन् १९३६ में सरकार ने कांग्रेस पर से प्रतिबंध हटा लिया तथा सन् १९३५ ई० के विधानानुसार चुनाव में कांग्रेस की भारी जीत हुई। सन् १९३७ ई० से १९४७ ई० तक के दस वर्ष गांधीवादी भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम के अंतिम चरण के वर्ष हैं। यहां यह स्मरणीय है कि गांधीजी के महान् व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव संपूर्ण भारत पर पडा, किन्तु गुजरात और हिन्दी प्रदेश की तद्विषयक अवस्थिति की दृष्टि से देखा जाय तो उनकी कर्मभूमि गुजरात अधिक काल रही। अतः अनेक रचनात्मक कार्यक्रमों का सूत्रपात्र एवं संचालन गुजरात से होता रहा। श्री विट्ठलभाई पटेल तथा सरदार वल्लभभाई पटेल जैसे नेता उनकी प्रेरणा से आगे आये और गुजरात की अनेक समस्याओं पर राज-नीतिक आंदोलन हुए। इस काल में कांग्रेस मंत्रि-मंडलों की स्थापना, ब्रिटिश प्रस्तावों का आवागमन, हिन्दू-मुस्लिम दंगे, भारत का विभाजन तथा स्वतंत्रता प्राप्ति का इतिहास है। स्मरणीय बात यह है कि इस संपूर्ण काल में इस नवीन चेतना ने जन मानस को जागृत करके उसे अतीत की ओर उन्मुख तो किया, किन्तु भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम के नेता अंग्रेजी शिक्षा से अधिक प्रभावित थे। डा० अमरनाथ झा ने लिखा है कि कांग्रेस वक्ताओं को बर्क, बायरन अथवा रिचनर्ड के किसी स्थल से अपने वक्तव्य को समाप्त करके देखना एक साधारण दृश्य था। संक्षेप में गांधीजी के प्रवेश से बुद्धि-जीवियों की कांग्रेस विशुद्ध रूप से जनता जनार्दन की बन गई। जनता की भावना के प्रतीक गांधीजी ने सामाजिक और आर्थिक पक्षों को राजनीति की अपेक्षा कुछ अधिक महत्ता प्रदान कर कांग्रेस कार्य प्रणाली को अनवरत कार्य साधना में डाल दिया ; जिसके फलस्वरूप कांग्रेस राष्ट्रीय आंदोलन के स्थान पर व्यापक जीवन कार्यों की नीति नित्य धर्म बन गई, जिससे मिलकर राष्ट्र के आदर्श और आकांक्षा एक राह हो गई।

प्रथम बार समस्त शक्तियों द्वारा रचनात्मक कार्यों के लिये सामूहिक प्रयत्न सत्याग्रह और अहिंसा के सहारे यथार्थ की भूमि पर आदर्शवादी गांधी के नेतृत्व में हुआ । स्पष्ट है कि आरंभिक कांग्रेस का सीमित लक्ष्य उनके प्रवेश से विस्तृत हो गया । अंत में महात्माजी के प्रयत्नों से ही सन् १९४७ में देश आजाद हो गया ।

राजनैतिक दृष्टि से गुजरात की हिन्दी प्रदेशों से भिन्न स्थिति पर भी विचार कर लेना यहां आवश्यक है । गुजरात में अनेक देशी राज्यों का बाहुल्य था जो १५ अगस्त १९४७ तक बने रहे । बडौदा के विशाल देशी राज्य के अतिरिक्त गुजरात में सात प्रथम श्रेणी के, छः द्वितीय श्रेणी के तथा नव तृतीय श्रेणी के राजा थे । इस प्रकार कुल २२ तेईस छोटी-बडी रियासते थीं ।[१] इनकी राजनीति अंग्रेजों की नीति से न्यूनाधिक रूप से प्रभावित थी । शेष भाग में अंग्रेजों का राज्य भी प्रतिष्ठित था और वह आर्थिक और व्यवसायी दृष्टि से गुजरात का महत्त्वपूर्ण भाग रहा है । सन् १९०९ ई० के आसपास लाल,बाल,पाल द्वारा संचालित पूर्ण स्वतंत्रता के अभियान का गुजरात पर भी प्रभाव पडा था । इस संदर्भ में भाई रणजीतराम बावाराम महेता का नाम विशेष उल्लेखनीय है । गुजरात के संदर्भ में दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि यहां प्रादेशिक गौरव भावना को जगाने का भी यत्न हुआ, किन्तु यह प्रादेशिक गौरव भावना संपूर्ण भारत की राष्ट्रीयता के लिए सहायक थी, बाधक नहीं । गुजरात की अस्मिता को जगाने में रणजीतराम के राजनैतिक कार्यों के बाद श्री कनैयालाल मुनशी के साहित्य को भी प्राप्त है ।[२] तीसरी उल्लेखनीय बात यह है कि इस कालखण्ड में अनेक राजनैतिक आंदोलनों का संचालन एवं रचनात्मक कार्यक्रमों का बीजारोपण गुजरात से ही हुआ, जिनमें से सन् १९२८ का बारडोली सत्याग्रह, सन् १९३० का दांडी

---

१ विस्तृत विवरण के लिये देखिये - History of Kathiawad by Wilberforce- Appendx-XII p.289.

२ " गुजरातनी अस्मिता " ए शब्द प्रयोग श्री मुनशीजीनो पण ए भाव श्री मुनशीजी ए रणजीतरामनां साक्षात् मूर्तिमन्त निरख्लो, ने त्यांथी लीधेलो " - न्हानालाल उद्बोधन, पृ० ७४

यात्रा तथा नमक सत्याग्रह आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है । यहां यह लक्ष्य कर लेना पर्याप्त होगा कि इन सब का प्रभाव पूरे देश पर पडा । गुजरात एक प्रकार से स्वतंत्रता संग्राम का केन्द्रस्थान अनेक वर्षों से बना । इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि गांधीयुग के रचनात्मक कार्यक्रमों का अन्य प्रदेशों की तुलना में अधिक गहरा प्रभाव गुजरात पर पडा होगा । गांधी युग में विदेशी वस्तुओं का ~~बहि~~ बहिष्कार, स्वदेशी आन्दोलन, देशव्यापी घटनाएं हैं ।

इन समस्त राजनीतिक गतिविधियों का प्रारंभ भारतेन्दु युग से चले आये हुए विचारों की शृंखला में साहित्य में अंकुरित होते देखते हैं । भारतेन्दु में जहां प्राचीनता के साथ नवीन के स्वागत की आकांक्षा थी वहां द्विवेदीकाल में सुधारवादी एवं नैतिकता की ओर बढ गई, किन्तु समस्त सत् साहित्य का पल्लवन द्विवेदी युग से न होकर स्वच्छन्दतावादी युग से ही अभिव्यक्त होता है । इसी प्रकार गुजरात के वीर कवि नर्मद ने झांसी की रानी, नाना साहेब और तात्या टोपे के शौर्य और बलिदान की प्रशस्तियां रच कर उक्त चेतना को जगाने का सत्प्रयास किया ।

निष्कर्ष :

पूर्ववर्ती पृष्ठों में आलोच्य-युग की राजनीतिक परिस्थितियों का जो संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है, उससे प्रकट है कि स्वतंत्रता संग्राम की रचनात्मक तथा चिन्तनशील राष्ट्रीय चेतना पूरे देश में व्याप्त रही और वह हिन्दी और गुजराती की काव्यधाराओं की प्रेरक शक्ति बनी । कवि न्हानालाल तो स्वयं गांधी के महान व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनके निकट आये जो कि एतद्विषयक उनकी रचनाओं से प्रमाणित है । इसी प्रकार प्रसादजी का बौद्ध चिन्तन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से गान्धीवाद से प्रभावित माना जा सकता है । दूसरे, स्वतंत्रता का उद्बोधन जो कि इस पूरे युग की सब से सशक्त चेतना है, का व्यापक प्रभाव प्रसाद और न्हानालाल दोनों पर समान रूप से पडा । दोनों कवियों की एतद्विषयक रचनाएं इसे प्रमाणित कर देती हैं । तीसरे गांधीजी ने प्रयत्नभर राजनीति को सर्वस्व नहीं बनने दिया । गुजरात में उनके रचनात्मक कार्यक्रमों अनुयायियों की परम्परा आज भी

वर्तमान है । प्रसाद में इस प्रभाव को " ध्रुवस्वामिनी " के निम्न लिखित कथन से देखा जा सकता है :-

" राजनीति ही मनुष्यों के लिए सब कुछ नहीं है ।
राजनीति के पीछे नीति से भी हाथ धो न बैठो,
जिसका विश्व-मानव के साथ व्यापक सम्बन्ध है । "[१]

चौथा तथ्य है, देश की सांस्कृतिक परम्परा के प्रति गौरव भावना जो राष्ट्रीयता का अंग है ; यह प्रसादजी और कवि न्हानालाल के काव्यों में समान रूप से प्राप्त होता है ।

सामाजिक परिस्थितियां :

जयशंकर प्रसाद और न्हानालाल के युग की सामाजिक परिस्थितियां मुगल काल के अंतिम दिनों की परिस्थितियों के अवशेष से विकसित हुई । मुगलकालीन परम्पराएं सामंतीय व्यवस्था पर आधारित थीं । आर्थिक व्यवस्था ने समाज को तीन वर्गों में विभाजित कर दिया था, आय की अपेक्षा-कृत व्यय के आधिक्य में राजे, महाराजे, अमीर और उमरा तथा नवाब थे । मध्यमवर्ग में जीवनयापन की सामर्थ्य भर रखनेवाले सामान्य कर्मचारी, व्यापारी तथा साहूकार और तृतीय वर्ग में जनता का विशाल समुदाय, किसान, नौकर, मजदूर अपनी जीविकोपार्जन में असहाय होने पर भी उच्च वर्ग के शोषण से दयनीय स्थिति में दया के पात्र थे । दूसरी ओर विलास के उपादानों पर अतुल धन-व्यय, कामिनी और कांचन में कामिनी को देखने की मनोवृत्ति, सुरा सुन्दरी का मुक्त प्रयोग, अलंकृत परिधानों में आवृत हरण की हजारों युवतियों के चित्र उस समय की गाथा कहते हैं । बादशाहों के व्यक्तिगत जीवन का व्यय शोषक शोषित जनता के लिए असहनीय था । राजकर्मचारियों का खुले रूप में उत्कोच लेना,

१ प्रसाद, ध्रुवस्वामिनी, पृ० ४४

शासकों का निर्णयात्मक बुद्धि के अभाव में दरबारियों की इच्छा का दास बन जाना आदि परिस्थितियों के कारण, राजनीतिक और आर्थिक संकटों का सामना करने से असमर्थ भोग और विलासिता के क्रोड में अपने सुख स्वप्नों का नीड बनाने लगे थे।

सन् १८५७ की क्रांति के बाद देश की नीति इंग्लैंड से निर्धारित होने लगी थी। देश में पड़े व्यापक अकालों ने अंग्रेजों की आँखें खोल दीं। सडक, नहर, रेल, तार तथा डाक का आयोजन इस देश में हुआ। सन् १८६९ में स्वेज नहर खुल चुकी थी। यातायात के इस विकास ने पश्चिम और पूरब की दूरी कम कर दी ; जिसके फलस्वरूप पश्चिम के मनोभावों से हमारा सम्पर्क द्रुतगति से बढ़ने लगा। यंत्रों में विकसित भौतिक प्रधान पश्चिम की सभ्यता हमारे निकट आने लगी। इससे हमारे मनस्तत्व भी प्रभावित हुए, जिनका प्रभाव हमारे साहित्य और कला पर भी पडा।

सामाजिक परिस्थितियों का दूसरा पक्ष है अनेक जातियों का विकास। जाति-परम्परा तथा रक्त मिश्रण से बनी अनेक जातियों के अतिरिक्त उद्योग-धन्धों के आधार पर बनी हुई सैकडों जातियां इस देश में वर्तमान थीं, वर्ण-व्यवस्था तो धर्म ग्रन्थों का उल्लेख मात्र ही थी। जाति भेद ने समाज में विषमता, ईर्ष्या, द्वेष तथा ऊंच-नीच की भावना को प्रतिष्ठित कर दिया था। इसके साथ ही अनेक असामाजिक, अमानवीय पतनोन्मुख व्यवस्थायें, सामाजिक कलह और विग्रह, ऊंच नीच का भेद, प्रान्तीयता अपने चरम उत्कर्ष पर थे। सती प्रथा, बाल-विवाह, नर-बलि, बहु-विवाह, खान-पान-भेद, समुद्र यात्रा निषेध, पर्दा, नशा सभी कुछ समाज में व्याप्त थे। अंग्रेजों ने इनके सुधार में वैधानिक और सामाजिक दृष्टि से व्यापक योगदान दिया।[१]

कालान्तर में जनता में नया जोश, नई जागृति और नये विचार आये। अतीत की संस्कृति जो दबा दी गई थी वह सजीवन हुई और राष्ट्रीय जागृति के

००००००००००००००००००

१ डा० सुधाकर पाण्डेय, प्रसाद की कविताएं, पृ० १९

कारण लोगों ने सामाजिक परिस्थिति के प्रति अपना ध्यान केन्द्रित किया । पुरानी मान्यताएं और विचार व्यवहार में भी उसकी पर्याप्त असर हुई । उस समय लोग जंतर, मंतर, भूत प्रेत और तांत्रिक विद्याओं में मानते थे । मरने के बाद जाहिर में रोने कूटने का रिवाज था, अस्पृश्यता थी, स्त्रीओं को शिक्षा से वंचित रखते थे ; दहन की प्रथा थी, बाल लग्न होते थे, विधवा विवाह का निषेध था । कई जातियों में नव जात कन्याओं को मार डालते थे । समाज का एक वर्ग पाश्चात्य विचारधाराओं को मानने लगा । समाज का दूसरा वर्ग पूर्व और पश्चिम का समन्वय चाहने लगा और समाज का तीसरा वर्ग पुरानी मान्यताओं को ही दृढता से पकडा रहा । इस प्रकार समग्र समाज में मान्यताओं के आधार पर संघर्ष बढा, असहिष्णुता बढी इस और इस संघर्षों के कारण अनेक सामाजिक प्रश्न उपस्थित हुए ।

सुरत की सरकारी गुजराती शाला के शिक्षक श्री दुर्गाराम महेताजी सुरत के जो पांच " दद्दा " कहे जाते थे उसमें अग्रणी थे । वे मौलिक सुधारवादी थे । उनको सुधारक के रूप में " गुजरात के ल्यूथर " कहते थे । सामाजिक सुधार उनके जीवन का मूल मंत्र था । समाज में जडता से स्थापित अंधश्रद्धा युक्त विधि-विधान और गलत वहमों के प्रति उनका तीव्र विरोध था और उन्होंने विधवा विवाह की पूर्ण रूप से सिफारिश की थी । उन्होंने सन् १८४४ में मानव धर्म सभा की स्थापना की और धर्म में जडता से बने हुए अनिष्टों को दूर करने का प्रयास किया । इस सभा के द्वारा (१) मानव जाति का एक कुटुंब है (२) मानव मात्र पर प्रेम भाव रखो (३) सर्वधर्म के प्रति समभाव रखो आदि लघु मानवसूत्रों का प्रचार करके जनता में सामाजिक जागृति ला दी । उन्होंने " कुपात्र को दान " की प्रथा बंद कराने का भरसक प्रयास किया, और धर्म सराहनीय है अपितु सांप्रदायिकता संकुचितता है ; यह प्रचार किया । मनुष्य जन्म से नहीं लेकिन कर्म से श्रेष्ठ है, यह उनकी दृढ मान्यता थी ।

---

१ डा० सुधाकर पाण्डेय, प्रसाद की कविताएं, पृ० १५

उनका धर्म मानवधर्म था ।

महाराज लायबल केस द्वारा सन् १८६२ में श्री जदुनाथ महाराज के सामने अकेले मुकदमा लडनेवाले प्रथम पंक्ति के सुधारक श्री करसनदास मूळजी थे । वे " सत्य प्रकाश " के तंत्री थे और सुरत के जदुनाथ महाराज को ५० हजार वैष्णवों की पूरी मदद थी । फिर भी करसनदास ने अकेले उनके सामने मुकदमा लडा । " सत्य प्रकाश " में उनकी कापनी छिछालेदर की गई । करसनदास का संघर्ष व्यक्ति के प्रति नहीं, अपितु व्यक्ति के अनाचारों और दुराचारों के प्रति था । गुजरात के अनुपात में सौराष्ट्र में जागृति कम थी फिर भी वहां समाज सुधार और शिक्षण प्रचार का कार्य मणिशंकर कीकाणी ने किया था ।

वडोदा के महाराजा सर सयाजीराव ने अनेक सामाजिक सुधार किये थे । सन् १९०४ में बाल लग्न निषेध का कानून अस्तित्व में आया । उसमें बताया कि लडकी की आयु १२ से कम न हो और लडके की आयु १६ से कम न हो । वडोदा की महारानी ने युरोप आदि देशों का प्रवास किया । उन्होंने The position of Women in India नाम की पुस्तक लिखी है । दुर्गाराम महेताजी ने अस्पृश्यता विरुद्ध अपने दृढ विचार व्यक्त किये थे ; लेकिन वे विचार मात्र ही थे । वडोदा के महाराजा सर सयाजीराव गायकवाड ने इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया । तत्पश्चात् गांधीजी ने उसे पूरे भारत का प्रश्न बना दिया । वडोदा में सन् १८८३ से अस्पृश्यों के लिये अलग स्कूलें खोली गयीं । सन् १८८४ में तीस और सन् १८८७ में उसकी संख्या १० तक पहुंची । प्रारंभ में हिन्दु शिक्षक प्राप्त करना असंभव था ; इसलिये मुसलमान शिक्षक रखे गये । किसी भी प्रकार से यह सुधार का कार्य गतिशील रहा । अंत्यजों में धार्मिक शिक्षण के प्रचार के लिये उनके पुरोहितों को ज्ञान देने के लिए एक संस्कृत पाठशाला खोली गई । अंत्यज भाइयों को सरकारी महकमे में भी नौकरी मिलने लगी । वडोदा कालेज में अंत्यजों की पढाई के लिये शिष्यवृत्ति की व्यवस्था की गई । अंत्यजों

के अग्रणी डा० आंबेडकर को अमरिका भेज कर पी-एच०डी० की व्यवस्था स्वयं सयाजीराव महाराज ने की । सन् १८९२ में पूरे बडौदा राज्य में अनिवार्य और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षण की व्यवस्था की गई । सन् १९११ तक राज्य के $\frac{3}{4}$ भाग में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षण दाखिल किया गया । सन् १९१४ में बडौदा में महिलाओं के लिए चिमनाबाई उद्योगगृह खोला गया । सन् १९१५ में श्री सयाजीराव गायकवाड ने उत्तर गुजरात में महेसाणा में अंधे और बहेरों के लिए शाला खोली । इस प्रकार श्री सयाजीराव ने अनेक सुधार किये ।

भावनगर के महाराज स्व० भावसिंहजी ने अपने राज्य में मद्य-निषेध का कानून बनाया था और उसका अमल भी होता था । उनकी पत्नी नंदकुंवर बा ने ओमल प्रथा का त्याग किया था ।

सती होने की प्रथा लार्ड बेन्टिक के जमाने से बंद हो गई थी, वह स्तुत्य था । स्त्रिओं को धार्मिक त्रास में से मुक्ति मिली । विधवाएं पुनर्विवाह कर सकती है, बाल लग्न यह अयोग्य प्रथा है, कन्याविक्रय, वरविक्रय आदि आदि सामाजिक प्रश्नों पर चर्चाविचारणा होने लगी । कवि नर्मद ने विधवा विवाह के पक्ष में स्पष्ट रूप से लिखा ; जिसके फलस्वरूप उनको समाज में बहुत कुछ सहन करना पडा । लेकिन समाज गतिशील था । स्त्रिओं का सामाजिक स्थिति सुधारने का पूर्णतः प्रयास किया गया । विधवाएं पुनर्लग्न करें अथवा सम्मान से जीवित रह सके ऐसी व्यवस्था की गई । दुःखी और सामाजिक परिस्थिति में जकडी गई स्त्रिओं के लिये आश्रयस्थान और अनाथाश्रम शुरु हुए । विधवाएं ज्ञान प्राप्त कर स्वावलंबी बने यह माना गया, जिसके फलस्वरूप शिवगौरी बहन और नानी बहन ने वनिता विश्राम की प्रवृत्ति प्रारंभ की । इस प्रकार सन् १९१२ में सुरत में अशक्ताश्रम खोला गया । वहां खाना और रहना मुफ्त था । सुरत, अहमदाबाद, बम्बई, राजकोट आदि स्थलों पर स्त्री-शिक्षा की प्रवृत्ति का प्रारंभ हुआ । अहमदाबाद में महिपतराम अनाथाश्रम की स्थापना हुई और बाद में सुरत, बडौदा, राजकोट आदि स्थलों पर अनाथाश्रम खोले गये । अनेक

राज्यों में भी ऐसी संस्थाएं स्थापित हुई थी । इस प्रकार स्त्रिओं की और बालकों के जीवन के विकास की प्रवृत्ति शुरु हुई । मध्यम वर्ग की स स्त्रिओं के लिए महिला मंडलों की स्थापना हुई, वहां सीना, पिरोना, कासीदा आदि कलाएं सिखाई जाती थी । इस प्रवृत्ति से संस्कार प्राप्त होते और महिलाएं उद्योगी बनती उन्हें सामाजिक और मुक्त वातावरण प्राप्त हुआ । " स्त्री बोध ", " स्त्री जीवन " और "सुंदरी सुबोध " जैसी मासिक पत्रिकाएं भी प्रारंभ हुई, जिससे सामाजिक उत्कर्ष में पर्याप्त बल मिला । क्रम क्रम से स्त्री-शिक्षा का क्षेत्र विकसित हुआ । श्रीमती विद्या बहन और श्रीमती शारदाबहन सर्व प्रथम स्नातिका बनी और तदनंतर स्त्री-शिक्षा में उच्च स्तर पर विकास हुआ । कन्याशालाएं खूब बढी । महिलाएं शिक्षिका, नर्स, डाक्टर आदि भी बनने लगी । सन् १९०७ में काठियावाड में निराश्रित बालाश्रम की स्थापना हुई ।

सन् १९१५ में जब गांधीजी अहमदाबाद में आये, उसके बाद आमूल परिवर्तन हुआ । समाज ने करवट बदली, महिलाएं चहार दीवारी से बाहर आयीं, सत्याग्रह किया, शराब की दुकानों पर पिकेटिंग किया और जो अबलाएं मानी जाती थीं उन्होंने रण-चण्डी का उग्र स्वरूप धारण कर अंग्रेजों से लोहा लिया । स्त्रिओं ने मर्यादित क्षेत्र से बाहर आकर पुरुषों के समकक्ष कार्य किये । महिलाओं को समान मताधिकार प्राप्त हुआ । समाज ने स्त्रियों की महत्ता का स्वीकार किया । सन् १९३० के स्वातंत्र्य संग्राम के बाद महिलाओं के सामाजिक विकास में अनेकविध विकास हुए । सन् १९३४ में ज्योतिसंघ की स्थापना हुई । सन् १९३७ में अहमदाबाद में विकासगृह का प्रारंभ हुआ । इसमें अनाथ बालकों को भी प्रविष्ट किये गये ; और अनाथ बालकों को राष्ट्रीय संपत्ति मानी गई । तत्पश्चात् हळवद, वढवाण, राजकोट, जामनगर, भावनगर और अमरेली में सन् १९४५ से १९५५ तक ऐसी संस्थाएं खोली गई । सन् १९४५ में मोरारजीभाई और स्व० दरबार साहब ने अनाथाश्रमों का एकीकरण किया और महिलामंडळ, अनाथाश्रम आदि प्रवृत्तियों को व्यवस्थित की । इसी वर्ष श्रीमती

पुष्पा बहन महेता ने वढवाण में विकास विद्यालय की स्थापना की । आज महिला विकास से संबंधित ऐसे अनेकों मंडल गतिशील है । शिक्षण के क्षेत्र में सुरत वनिता-विश्राम, विट्ठल कन्या केळवणी मंडल, नडियाद, बड़ौदा की संस्थाएं और कलोल भगिनी मंडल ने अनेकविध विकास साधा है ।

गांधीजी ने सन् १९१९ में अहमदाबाद में आकर अपने स्वतः के दृष्टांत से श्रम की महिमा प्रस्थापित की । साबरमती आश्रम की स्थापना करके श्रम गौरव के साथ साथ उत्पादक श्रम की भी प्रतिष्ठा की और जनता को प्रतीति कराई कि :-

" जे व्यक्ति शक्ति प्रमाणे उत्पन्न करी शके नहिं तेने समाजनी कोईपण सुविधा मेळववानो अधिकार नथी "

(कृष्ट गुजरातनी अस्मिता, पृ० ३२४)

इस आश्रम में शाला प्रारंभ की और उसमें उत्पादन उद्योगों का पाठ्य-क्रम रखा । सन् १९२० में गुजरात विद्यापीठ की स्थापना हुई । इस विद्यापीठ में से जो विद्यार्थी बाहर आये उन्होंने गुजरात में बड़ा परिवर्तन कर दिया । राष्ट्र की मुक्ति के लिए प्राणों का बलिदान देने की तैयारी इस संस्था ने सिखलाई । समाज में अनेक प्रकार की गंदगी फैली हुई थी उसे दूर करने का प्रयास विद्यापीठ के समाज-सेवकों ने किया । मानव अपना जीवन सेवा और त्याग करके जी सके ऐसी शक्ति यहीं से प्राप्त हुई । आश्रमशाला ने और गुजरात विद्यापीठ ने हिम्मत, त्याग और निर्भयता की सीख दी । जनता की अंधश्रद्धा की भावना में परिवर्तन हुआ । धर्म की दृष्टि बदल दी गई । धर्म अर्थात्, संकुचित अर्थ में धर्म नहीं अपितु व्यापक अर्थ में जीवन-धर्म, मानव-धर्म कई सैंकडों वर्षों से अस्पृश्यता का कलंक भारतीय जनता को घेरे हुए था, गांधीजी ने उसे दूर किया । गांधीजी ने मानवधर्म की घोषणा की और एक मानव दूसरे मानव से अस्पृश्य नहीं अपितु सामाजिक है यह बतलाया । दूसरी सामाजिक त्रुटि शराब पीने की थी । स्थान स्थान पर गांधीजी ने भाषण देकर शराब के अनिष्टों को बतलाये और जहां तक हो सका जनता को उस दुर्गुण से बचाये ।

उन्होंने वस्त्र उत्पादन के लिये चरखा और शाल दाखिल किये ; जिसके फलस्वरूप गरीबों को रोजी और रोटी मिलने लगी । गुजरात की जनता ने " बापू " की प्रत्येक सूचना का पूर्ण रूप से पालन किया है । शिक्षण के क्षेत्र में भी बुनियादी शिक्षण की योजना बना कर " बापू " ने नया परिवर्तन किया । इसमें पढनेवाले विद्यार्थी नौकर न बन कर स्वाश्रयी, उत्पादक और परिश्रमी बनते हैं ।

सर टी० सी० होप, ए० के० फार्बस जैसे अंग्रेज मित्र, प्रो० ग्रीन जैसे शिक्षक और ख्रिस्ती मिशनरीओ ने गुजरात के " बुद्धिवादीओं " के समक्ष पश्चिम की संस्कृति के आदर्शों और विचारों को प्रस्तुत किये तब यहां के " बुद्धिवादी " लोग और भी अधिक प्रभावित हुए थे ।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि सन् १८५७ के बाद सन् १९१५ तक और सन् १९१५ से १९४६ तक गुजरात के सामाजिक विकास के दो स्तर स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं । प्रथम स्तर में सामाजिक विकास क्रम क्रम से लेकिन मंद गति से होने लगा । गांधीजी के आने के पश्चात् अर्थात् सन् १९१५ से १९४८ तक सामाजिक क्षेत्र में आमूल परिवर्तन हुए जो उपरनिर्दिष्ट कथनों से प्रतीत होता है ।

गुजरात के मुख्य समाज सुधारक व्यक्तियों की नामावली इस प्रकार है :-

रणछोडलाल छोटालाल, बेचरदास लश्करी, गोपाळ हरि देशमुख, लालशंकर उमिया शंकर, नवलराम, बंकोलाल, साकरलाल, सत्येन्द्रनाथ टागोर, नंदशंकर तुळजाराम, रणछोडलाल उदयराम, मनसुखराम सूर्यराम, भवेरीलाल उमियाशंकर, शंकर पांडुरंग पंडित, जूनागढ के श्री मणिशंकर किकाणी और वडोदा के हरगोविंददास द्वारकादास कांटावाला ।

निष्कर्ष :

पूर्ववर्ती पृष्ठों में देश की सामाजिक परिस्थितियों का जो आकलन

किया गया है उसके आधार पर यदि जयशंकर प्रसाद और कवि न्हानालाल के सामाजिक परिवेश की तुलना की जाय तो निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है :-

(१) ब्रिटिश शासन काल के आरम्भ से सामाजिक सुधारों तथा प्राचीन भारतीय धर्म व्यवस्था को युगानुरूप नयी व्याख्या देने का प्रयास पूरे भारत में हुआ ।

(२) सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विरोध तो पूरे देश में हुआ लेकिन इसका अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव गुजरात में दृष्टिगोचर होता है । इसके दो कारण है - एक शिक्षा का क्षिप्र प्रसार तथा दूसरे अंग्रेजों की रीति नीति एवं प्रादेशिक नेताओं का रचनात्मक कार्यक्रम । हिन्दी प्रदेश अपेक्षाकृत रूढ़िवादी स्थिति से अधिक संलग्न रहे ।

(३) तीसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य नारियों की जागृति । यह जागृति भी गुजरात में अधिक मात्रा में हुई । फिर भी इस युगीन चेतना का समान प्रभाव प्रसाद और न्हानालाल में उत्कृष्ट मात्रा में विद्यमान है ।

सांस्कृतिक परिस्थितियाँ :

विलासिता से जर्जरित, श्री हीन, ह्रासशील मुगल सम्राटों में भारतीय जनता के लिए उत्तराधिकार के रूप में शोषण एवं संघर्षण तथा कटुता के चिह्न आये दिन के जीवन में छोड़े थे । भारतीय समृद्ध संस्कृति के उत्तराधिकारी अवरुद्ध जीवन से उत्पन्न स्थिति का भान युद्धक्षेत्रों में पराजित योद्धा की भांति करने लगे । एक ओर ईसाइयत का प्रचार, अंग्रेजी शिक्षित हिंदुओं का अपने ही भाइयों के प्रति हीन व्यवहार एवं योरूपीय वैज्ञानिक विचार आदि बल, छल, छल के सहारे समाज में बढ़ रहे थे । दूसरी ओर धार्मिक क्षेत्र में आदिकालीन सत्य पर, भक्ति का उपदेश, उपदेशक के ऊपर भक्ति के रूप में सीमित हो कर रूढ़िवादी अधिक होता जा रहा था । ऐसे ही समय भौतिकवादी योरूपीय आगमन का व्यापारी जहाज सामुद्रिक हिमखंड की भांति अनेक संभावनाएं छिपाये भारतीय भूमि पर विपुल साधनों के साथ उतरने लगा ।

ईसाई पादरियों ने हिंदू धर्म में आई संकीर्णता का पूरा लाभ उठाते हुए भारतीय संस्कृति को अपनी सभ्यता से हीन प्रचारित करने का प्रयास किया। हिन्दू जाति अपने गौरवपूर्ण इतिहास की उपहासपूर्ण व्याख्या " पराधीनता " से प्राप्त शिथिलता में घुल रही थी। अंग्रेजों का भोग पर आधारित विकसित जीवन, त्याग से प्रेरित भारतीय ह्रासशील आध्यात्मिक जीवन को चुनौती देने लगा। गतिशील भारतीय समृद्ध संस्कृति की धारा पूर्व के अनेक कारणों से अवरुद्ध होने की स्थिति में, योरूपीय विरोधी पर नवीन वैज्ञानिक संस्कृति के सम्पर्क में अपने शाश्वत सांस्कृतिक स्रोतों में बाहर से आनेवाले विचारों की खोज करने लगे।

> " भारत में नवोत्थान का जो आन्दोलन उठा, उसका लक्ष्य अपने धर्म, अपनी परम्परा और अपने विश्वासों का त्याग नहीं प्रत्युत योरूप की विशिष्टताओं के साथ उनका सामंजस्य बिठाना था। "[१]

अंग्रेजी शिक्षा में शिक्षित कुछ व्यक्तियों ने पाश्चात्य विचारों का अन्धानुकरण भी किया। यथा -

> "Every thing Indian was obvious in their eyes. If their English masters went to church they did the same. They looked their dress, their drinks, their beefs."[2]

पर साथ ही अनेक विचारों के समक्ष, सफल रूप में उपस्थित करने के लिए बौद्धिक तथा आध्यात्मिक अधोगति के कगार पर खड़े भारतीय जीवन की विस्मृत आत्म चेतना को सांस्कृतिक निधि की व्याख्या से पुनर्जीवित करने लगे। अंग्रेजी शिक्षित वर्ग, पश्चिमी विचारों से अप्रभावित जनता से दूर होनेलगा। यथा

---

१ दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ४४२

२ Indian Liberalism, V.N.Naik, p.12.

" इससे एक दोष भी निकला कि हमारे यह बुद्धिजीवी जनता से विच्छिन्न हो गये क्योंकि जनता विचारों की इस नई लहर से अप्रभावित थी । "[1]

किंतु इनकी अंग्रेजी भक्ति विशुद्ध आत्मसम्मान पर आधारित अपनी जाति को उठाने के लिए देशभक्ति से प्रेरित थी - यथा -

"Their patriotism was not the foot of their loyalty, rather their loyalty was the foot of their sturdy Patriotism."[2]

ब्रह्म समाज :

राजा राममोहनराय ने सन् १८०३ में मुर्शिदाबाद से प्रकाशित "तुहफतुल-मुवाहि दीन" प्रति में मूर्तिपूजा का खंडन, एकेश्वरवाद का मंडन तथा विश्वधर्म की आवश्यकता पर बल दिया । प्रमुख पांचों उपनिषद सहित वेदान्त की पुस्तकों का बंगला में अनुवाद कर हिन्दू धर्म को एकेश्वरवाद पर आधारित ईसाई धर्म की अपेक्षाकृत अधिक उदार तथा तर्कसम्मत सिद्ध किया ।

" इत्स्वल सजेशन " (१८२३) में धार्मिक सहनशीलता तथा एक ईश्वर के विश्वासी सभी को धार्मिक बंधुत्व मानते विभिन्न धर्मों के गहन अध्ययन से उत्पन्न सूक्ष्म वैज्ञानिक दृष्टि ने विश्व मानववाद को जन्म दिया जो योरुपीय सीमाओं में ससीम रहनेवाले मानववाद की अपेक्षाकृत अपने असीम क्रोड में समस्त भूमंडल की स्वतंत्र समृद्ध पराधीन हालत और निष्पीड़ित जातियों के लिए एक उदार मंच लिये था । उन्होंने शैक्षिक संस्कारों के आग्रह तथा सामयिक समस्याओं के समाधान के लिये प्राचीनतम सांस्कृतिक उन्हीं सत्यों के आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुकूल व्याख्या की जो उसके अनुरूप थी । हिन्दू धर्म के एक पक्ष का प्रतिपादन हुआ । सर्व धर्मानुयायियों

१ दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, भूमिका, जवाहरलाल नेहरू, पृ० १०

२ Lajpatrai - Young India, p.120.

के सम्मिलिन की प्रेरणा से (१८१५) आत्मीय सभा जो (१८१९) आगे " यूनिटेरियन सोसाइटी " में बदल गई । २० अगस्त १८२८ को विशुद्ध वेद तथा औपनिषदिक धरातल पर " ब्रह्म समाज " की कलकत्ता में स्थापना द्वारा अपने सभी विचारों का प्रचार किया । राममोहनराय की मृत्यु के उपरान्त (१८३८) संत एवं रहस्यवादी देवेन्द्रनाथ द्वारा स्थापित " तत्वंशहनी सभा " जिसका नाम विद्या वागीश ने " तत्त्वबोधिनी " कर दिया था, ब्रह्मसमाज में मिला दी गई । राममोहनराय के विचारों से सहमत होते हुए भी उनकी विशेषता यह थी कि वे वेद और उपनिषदों के अटूट विश्वासी थे । १८५७ ई० में केशवचन्द्र सेन द्वारा ब्रह्मसमाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए । उन्होंने हिन्दू धर्म को ईसाइयत की ओर झुकाया । अंतर्जातीय विवाह तथा स्त्रियों की ब्रह्मसमाज में सदस्यता का मार्ग खोल दिया पर अंतिम समय में केशवचन्द्र सेन आदर्श और रहस्यवाद की ओर अधिक उन्मुख हो गये, परिणाम स्वरूप उनके शिष्यों ने उनका साथ छोड़ दिया और कूचबिहार के नाबालिग हिन्दू राजकुमार से केशवचन्द्र की पुत्री के विवाह के प्रश्न पर उनकी प्रतिष्ठा को बहुत धक्का लगा और समाज में फूट पड़ गई ।[१] उन्होंने सन् १८७८ में " साधारण समाज " की स्थापना, रूढ़ियों के बहिष्कार तथा गुरुडमों का त्याग करने के लिए की । संक्षेप में राम-मोहनराय भारत को यूरोप नहीं बनाना चाहते थे । वे तो भारत में प्राचीन सत्वों का समन्वय यूरोप के नवीन अनुसंधानों के साथ करना चाहते थे । साथ ही उनका उद्देश्य ईसाइयत के आक्रमणों से हिन्दुत्व की रक्षा करना था । जीवन के अंतिम काल में भारतीयता और ईसाइयत की ओर यद्यपि वे अधिक झुक गये किन्तु ब्रह्मसमाज यूरोप का भारतीयकरण नहीं, प्रत्युत भारत के ही यूरोपीयकरण का प्रयास था ।[२] फिर भी ब्रह्मसमाज के मूल में विराट विश्व बंधुत्व की कल्पना थी, वह समन्वयवादी संस्था थी ; जिसमें वेदान्त और अंग्रेजी उपयोगितावाद के दर्शन का सुन्दर सम्मिलन था ।

१ K.C.Vyas, The Social Renaissance in India, p.186.

२ दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ४५५-४५६

आर्य समाज :

यूरोप के बुद्धिवाद ने भारतवर्ष को इस प्रकार झकझोर डाला कि हिन्दुत्व के बुद्धिसम्मत रूप को आगे लाये बिना कोई भी सुधारक भारतीय संस्कृति की रक्षा नहीं कर सकता था। आर्य समाज के प्रणेता स्वामी दयानंद सरस्वती ने बुद्धिवाद की कसौटी बनाई और उसे हिन्दुत्व, इस्लाम, और ईसाइयत पर, निश्छल भाव से लागू कर दिया, परिणाम यह हुआ कि पौराणिक हिन्दुत्व तो इस कसौटी पर खंड-खंड हो ही गया, इस्लाम और ईसाइयत की भी सैंकड़ों कमजोरियां लोगों के सामने आ गयीं।[1]

स्वामी दयानन्द विश्व-मानवता के नेता थे। उनका उद्देश्य सभी मनुष्यों को उस दिशा में ले जाना था जिसे वे सत्य की दिशा समझते थे। दयानंद के अन्य समकालीन सुधारक – राममोहनराय, रानाडे, केशवचन्द्र और तिलक – केवल सुधारक मात्र थे, किन्तु दयानन्द क्रान्ति के वेग से आये और उन्होंने निश्छल भाव से यह घोषणा कर दी कि हिन्दू धर्म ग्रन्थों में केवल वेद ही मान्य है। अन्य शास्त्रों और पुराणों की बातें बुद्धि की कसौटी पर कसे बिना मानी नहीं जानी चाहिए। स्वामीजी ने मूर्तिपूजा, अवतारवाद, तीर्थों और अनेक पौराणिक अनुष्ठानों का समर्थन नहीं किया।

जब स्वामी दयानंद आर्यों की उन्नति का उद्देश्य लेकर कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए उस समय की स्थिति अत्यंत शोचनीय थी, जिसका कि उल्लेख पीछे किया जा चुका है। इन सब के कारण हिंदुओं का धर्म, जीवन और दर्शन अस्तव्यस्त हो रहा था और निराशा तथा किंकर्तव्यविमूढ़ता का वातावरण गहरा होता जाता था। स्वामी दयानंद को इन सब से लड़ना पड़ा।[2]

---

१ दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ४९५

२ डा० केसरी नारायण शुक्ल, आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत, पृ० ४८

दयानंद की सब से पहली लडाई सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध थी। उन्होंने धर्म और समाज की मूलभूत भावनाओं में परिवर्तन ला दिया। जन्म के स्थान पर कर्म का सिद्धान्त मानकर उन्होंने वर्णभेद का विरोध किया। मूर्ति पूजा का विरोध उनके समाज की दूसरी मुख्य विशेषता थी। एक ईश्वर की प्रतिष्ठा द्वारा अनेक मत-मतांतरों के झगड़ों को मिटाने का प्रयास किया। स्वामीजी ने विधवा विवाह का समर्थन, बाल विवाह का विरोध, अछूतोद्धार आदि सामाजिक सुधार भी किये। सार्वजनिक सेवाओं के लिए आश्रमों की स्थापना भी समाज के द्वारा हुई। अनाथाश्रम, विधवाश्रम खोलने के साथ साथ बाढ, दुर्भिक्ष आदि के समय सहायता के लिए समिति की योजना करनेवाली यह प्रथम भारतीय संस्था थी। स्वामीजी ने वेदाध्ययन के लिए गुरुकुलों की स्थापना की। वे संस्कृत और हिन्दी की शिक्षा पर जोर देते थे। वेदाध्ययन और देशभाषा के अनिवार्य होने से लोग वैदिक युग को विश्व संस्कृति का सर्वोत्तम शिखर मानने लगे।[1]

स्वामीजी ने भारतीयों के हृदय में देश के अतीत के प्रति गर्व जगा कर लोगों में आत्म-सम्मान की भावना जगाई। स्वामीजी ने लोगों को विदेशी शासन की अनुपयुक्तता समझाई। राष्ट्रीय जागरूकता और राजनीतिक चेतना के विकास और प्रसार में आर्यसमाज का महत्त्वपूर्ण हाथ है। आर्य समाज के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि स्वामी दयानंद मूलतः गुजरात के निवासी थे, यद्यपि आगे चल कर उनकी कर्मभूमि प्रधानतया हिन्दी प्रदेश बनें।

आर्य समाज का सभी क्षेत्रों में व्यापक प्रभाव पडा। इसके फलस्वरूप सांस्कृतिक जागरण, अंधानुकरण प्रवृत्ति का त्याग, स्वदेश के प्रति अनुराग, आत्म सम्मान तथा आत्मनिर्भरता, राजनीतिक चेतना, हिंदुओं में जातीयता की तीव्र भावना आदि सभी क्षेत्रों का स्वामीजी ने उद्धार किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्य समाज की प्रगति सर्वतोमुखी थी।

---

१ डा० केसरी नारायण शुक्ल, आधुनिक काव्य धारा का सांस्कृतिक स्रोत, पृ० ४९-५०

पंडित चमूपति ने सत्य ही कहा है कि " आर्य-समाज" के जन्म के समय हिन्दू कोरा फुसफुसिया जीव था । उसके मेरुदंड की हड्डी थी ही नहीं ; चाहे कोई उसे गाली दे, उसकी हंसी उडाये, उसके देवताओं की भर्त्सना करे या उसके धर्म पर कीचड उछाले जिसे वह सदियों से मानता आ रहा है, फिर भी, इन सारे अपमानों के सामने वह दांत निपोर कर रह जाता था । लोगों को यह उचित शंका हो सकती थी कि यह आदमी भी है या नहीं ; इसे आवेश भी चढ़ता है या नहीं अथवा यह गुस्से में आकर प्रतिपक्षी की ओर घूर भी सकता है या नहीं । किन्तु आर्य समाज के उदय के बाद, अविचल उदासीनता की यह मनोवृत्ति विदा हो गयी । हिन्दुओं का धर्म एक बार फिर जगमगा उठा है । आज का हिन्दू अपने धर्म की निन्दा सुन कर चुप नहीं रह सकता, जरूरत हुई तो धर्मरक्षार्थ वह अपने प्राण भी दे सकता है । [१]

प्रार्थना समाज :

सन् १८६४ ई० में केशवचंद्र सेन बम्बई गये और वहां उन्होंने ब्रह्म समाज की शाखा खोलनी चाही । उनके प्रभाव से बम्बई में ब्रह्म समाज की शाखा प्रार्थना समाज के नाम से खुली जिसके मुख्य उद्देश्य चार थे :-

(१) जाति प्रथा का विरोध,

(२) विधवा विवाह का समर्थन,

(३) स्त्री-शिक्षा का प्रचार,

(४) बाल विवाह का अवरोध ।

महाराष्ट्र में प्रार्थना-समाज की और भी कई शाखाएं खोली गयीं, जिनमें से कुछ संस्थाएं अपने को ब्रह्म समाज भी कहती थीं ।

ईसाइयत और यूरोपीय विचारों के आक्रमणों से बचने के लिये हिन्दुत्व

१ The Cultural Heritage of India, Part-II.

ने महाराष्ट्र में रानाडे को जन्म दिया, वे उत्कट सुधारवादी थे एवं रूढ़ियों को मिटा कर वे हिन्दुत्व का निर्मल रूप प्रस्तुत करना चाहते थे ।

नवोत्थान के क्रम में महाराष्ट्र में चार नेता उत्पन्न हुए आगारकर, रानाडे, गोखले और तिलक । आगारकर का प्रभाव अपने प्रान्त तक सीमित रहा । रानाडे प्रधानतः समाज-सुधारक थे, किन्तु गोखले और तिलक राजनीति के भी अग्रणी नेता हुए हैं । तिलक जी ने महाराष्ट्र में गणेशपूजा और शिवाजी महोत्सव का प्रवर्तन किया जिससे हिन्दू-राष्ट्रीयता के भाव जोर से लहरा उठे । तिलक जी ने यह घोषणा की थी कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है । उन्होंने ही यह कहा था कि प्रस्तावों और भाषणों से कुछ होनेवाला नहीं है । हमें ठोस कार्य करना चाहिए । रानाडे, यद्यपि राजनीति में नहीं उतरे, किन्तु सांस्कृतिक धरातल पर उन्होंने जो कुछ किया, उससे भारत की राष्ट्रीयता को अपेक्षित उत्तेजना मिली । उन्होंने प्रार्थना-समाज के माध्यम से उनके चारों सिद्धान्तों का पूर्ण रूप से पालन किया । उन्होंने मनुष्य से मनुष्य की समानता को प्रश्रय दिया था । वे धर्म के बाह्याचारों के आलोचक थे और जाति प्रथा की कट्टरता का उन्होंने विरोध किया था । वे प्रार्थना-समाज को सर्वजन-ग्राह्य बनाना चाहते थे ।[1]

गुजरात में प्रार्थना-समाज की प्रथम स्थापना सन् १८७१ ई० में अहमदाबाद में हुई । कलकत्ता के प्रख्यात ब्रह्मोपासक बाबू प्रतापचंद्र मजुमदार अहमदाबाद में आये और उससे प्रार्थना समाज को बड़ी मदद और गति मिली । उसी वर्ष समाज के मंदिर के लिये चंदा इकट्ठा किया गया और सन् १८७६ में ट्रेनिंग कालेज के सामने " प्रार्थना-समाज " का मंदिर बांधा गया । श्री भोलानाथजी ने सन् १८८२ तक उसके नेता और प्रमुख बन कर सेवाएं की । उनके निधन के बाद श्री महीपतराम और श्री लालशंकर जी ने उस कार्य को आगे विकसित किया । " प्रार्थना-समाज " के उपयोग के लिये

oooooooooooooooooo

१ दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ४६०-४६१

श्री मोहानाथ जी ने " ईश्वर प्रार्थना माला " नामक पुस्तक लिखी थी । महर्षि देवेन्द्रनाथ टागोर के द्वितीय पुत्र श्री सत्येन्द्रनाथ टागोर जो अहमदाबाद में डिस्ट्रिक्ट जज थे उन्होंने भी " प्रार्थना-समाज " में अनेकों व्याख्यान देकर उसका उत्कर्ष साधा था । गुजरात में " प्रार्थना समाज " एक अलग धर्म के रूप में नहीं था और हिन्दी प्रदेश तो एक प्रकार से इससे अछूता ही रहा है ।

थियोसाफिकल सोसायटी :

थियोसाफिकल सोसायटीनी का नाम विदेशी है और यह संस्था भी विदेश में ही जन्मी थी । इस संस्था की एक सभानेत्री श्रीमती एनी बीसेंट ने हिन्दुत्व के नवोत्थान एवं भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में भूरि भूरि प्रयास किये हैं ।

श्रीमती बीसेंट अंग्रेज थी, एवं अत्यंत कुलीन वंश की कन्या थी । उनके सहकर्मी जार्ज बर्नार्ड शा थे । शा ने लिखा है कि उस समय इंग्लैंड में उनके समान ओजस्वी भाषण देनेवाला कोई व्यक्ति नहीं था । उनके भाषण का विषय हिन्दुत्व होता था । काशी में एक बार उनका भाषण सुन कर एक प्रतिष्ठित पंडित ने उन्हें "सर्वशुक्ला-सरस्वती " की उपाधि दे डाली थी ।[१]

भारत और हिन्दुत्व को श्रीमती बीसेंट एक-दूसरे का पर्याय मानती थीं । अपने एक भाषण में उन्होंने हिन्दुओं से कहा था कि -

" भारत और हिन्दुत्व की रक्षा भारतवासी और हिन्दू ही कर सकते हैं । हम बाहरी लोग आप की चाहे जितनी प्रशंसा करें, किन्तु, आप का उद्धार आप के ही हाथ है । आप किसी प्रकार भ्रम में न रहें । हिन्दुत्व के बिना भारत के सामने कोई भविष्य नहीं है । हिन्दुत्व ही वह मिट्टी है

१ शा के शब्द हैं - Greatest orator in England and Possibly in Europe.

जिसमें भारतवर्ष का मूल गडा हुआ है। यदि यह मिट्टी हटा ली गयी तो भारत रूपी वृक्ष सूख जायगा। मुर्दनी, पस्त हिम्मती और निराशा की इस खाई को भरने के लिये यह आवश्यक था कि हिन्दुओं के भीतर अपने धर्म के प्रति आस्था और अपने इतिहास के प्रति अभिमान जगाया जाय। आखिर जिस जाति के पास उपनिषदें, गीता और दर्शन, विचारों और भावों का इतना अपार साहित्य मौजूद रहा हो उसे किसी से लज्जित होने की क्या आवश्यकता है। "[1]

श्रीमती बीसेंट और उनके समाज ने अखंड हिन्दुत्व का वीरतापूर्ण आख्यान किया। उन्होंने केवल वेद, उपनिषद और गीता का ही हवाला नहीं दिया, प्रत्युत, स्मृति, पुराण, धर्मशास्त्र और महाकाव्य का जहाँ जो बात मिली, सब के द्वारा पूर्णरूपेण समर्थन किया। सन् १९१४ ई० में उन्होंने एक भाषण में कहा था कि —

" चालीस वर्षों के सुगंभीर चिंतन के बाद मैं यह कह रही हूं कि विश्व के सभी धर्मों में हिन्दू धर्म से बढ़ कर पूर्ण वैज्ञानिक, दर्शन युक्त एवं आध्यात्मिकता से परिपूर्ण धर्म दूसरा और कोई नहीं है। "

भारत की निन्दा करनेवाले यूरोपियनों और भारतवासियों को जैसा मुंहतोड जवाब श्रीमती बीसेंट ने दिया, वैसा किसी और से नहीं हो सका। यह बीसेंट की निष्पक्षता और उदारता का परिणाम था कि मिशनरियों के देश में कमी आयी और संसार भारत के सात्विक रूप को पहचान ने में समर्थ हुआ। सन् १९१४ ई० से श्रीमती बीसेंट भारत की राजनीति में भी भाग लेने लगी। तिलकजी के द्वारा चलाये हुए होम रूल आदोलन का पक्ष उन्होंने बडे ही जोर से लिया। गांधीजी के आविर्भाव के लिए जमीन तैयार करने वालों में एक अमर नाम श्रीमती एनी बीसेंट का भी है।

oooooooooooooooo

१ दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ४७४-७५

" थियोसाफी कोई स्वतंत्र धर्म नहीं है। यह सभी धर्मों में समन्वय चाहती है। थियोसाफी धर्म नहीं धर्म का आश्रय है। इस आंदोलन का ध्येय है कि सभी धर्मों में जो तत्त्व समान है उन्हें लेकर सभी धर्मों के बीच एकता स्थापित की जाय। विश्व-बन्धुत्व, तुलनात्मक धर्म और परलोक विद्या का संधान थियोसाफी के ये तीन उद्देश्य अत्यंत स्पष्ट है "[1]

थियोसाफी का अर्थ होता है ब्रह्मविद्या - Theos = ईश्वर, Sohia = ज्ञान ईश्वर का ज्ञान या ब्रह्मविद्या।

रामकृष्ण-मिशन :

आर्य समाज और ब्रह्म समाज बड़े ही प्रबल सांस्कृतिक आंदोलन थे। किन्तु, उनकी जो त्रुटियाँ थीं, वे रामकृष्ण को ठीक दिखाई पडीं। दयानंद और राममोहनराय तथा केशवचन्द्र सेन से रामकृष्ण अनेक बातों में भिन्न थे। दयानंद, राममोहन और केशवचन्द्र संस्कृति के आंदोलनकारी नेता थे, किन्तु रामकृष्ण को आन्दोलन से कोई सरोकार नहीं था। परमहंस रामकृष्ण अनुभूतियों के आगार थे और उनके जीवन को देखकर यह स्पष्ट हो गया कि जिसे अनुभूति प्राप्त हो जाती है, ज्ञान का द्वार उसके सामने स्वयं उन्मुक्त हो जाता है तथा सारी विद्याएं उसे उपलब्ध हो जाती हैं।

रामकृष्ण के आगमन से धर्म की यही अनुभूति प्रत्यक्ष हुई। उन्होंने अपने जीवन से यह बता दिया कि धार्मिक सत्य केवल बौद्धिक अनुमान की वस्तु नहीं है। वे प्रत्यक्ष अनुभव के विषय है और उनके सामने संसार की सारी तृष्णाएं सारे सुख-भोग तृणवत् नगण्य है।[2]

१ दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ४७७-४७८

२ वही, पृ० ४८२

~~रामकृष्ण का दृढ विश्वास था कि सृष्टि के रहस्य बुद्धि से उद्घाटित नहीं होते। इसके लिए शक्ति अपेक्षित होती है जो पंडित नहीं, सन्त के साथ आती है। सहजानुभूति, ज्ञान से अधिक शक्तिशालिनी वस्तु है~~

रामकृष्ण का दृढ विश्वास था कि सृष्टि के रहस्य बुद्धि से उद्घाटित नहीं होते। इसके लिए शक्ति अपेक्षित होती है जो पंडित नहीं, सन्त के साथ आती है। सहजानुभूति, ज्ञान से अधिक शक्तिशालिनी वस्तु है। जब आस्तिक और नास्तिक हिन्दू, ईसाई और मुसलमान आपस में इस प्रश्न पर लड रहे थे कि किस का धर्म ठीक है और किस का नहीं, तब परमहंस रामकृष्ण ने सभी धर्मों के मूल-तत्त्व को अपने जीवन में साकार करके, मानों, सारे विश्व को यह संदेश दिया कि धर्म को शास्त्रार्थ का विषय मत बनाओ। हो सके तो उसकी सीधी अनुभूति के लिये प्रयास करो। सभी धर्म एक ही ईश्वर की ओर ले जानेवाले अनेक मार्ग हैं और जो उनका उपदेश था उसे उन्होंने अपने जीवन में उतारा। भारतवर्ष की धार्मिक समस्या का जो समाधान रामकृष्ण ने दिया है, उससे बडा और अधिक उपयोगी समाधान और कोई हो नहीं सकता। रामकृष्ण ने कहा है कि -

> " साधन और मार्ग अनेक हैं। उनमें से मनुष्य किसी को भी चुन सकता है। शान्ति मार्ग से नहीं, अनुभूति से मिलती है। "

भारतीय जनता की पाँच हजार वर्ष पुरानी धर्म-साधना-रूपी लता पर रामकृष्ण सब से नवीन पुष्प बन कर चमके और उन्हें देख कर भारतीय जनता को फिर से यह विश्वास हो गया कि भारत में धर्म की अनुभूति जगानेवाले जिन अनन्त ऋषियों और संतों की कथाएं सुनी जाती हैं वे झूठ नहीं हैं।[1]

हिन्दू धर्म में जो गहराई और माधुर्य है, रामकृष्ण उसकी प्रतिमा थे।

ठठठठठठठठठठठठठठठठ

१ दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ४८३-८४

वे दिन-रात परमार्थ चिन्तन में निरत रहते थे। वे तर्कों का सहारा कम लेते थे, जो कुछ समझना होता उसे उपमाओं और दृष्टांतों से समझते थे वे अपनी अनुभूतियों का निचोड दूसरों के हृदय में उतारते थे।

आचार्य प्रतापचन्द्र मजुमदार ने लिखा है कि -

" श्री रामकृष्ण के दर्शन होने के पूर्व, धर्म किसे कहते हैं, यह कोई नहीं समझता। सब आडंबर ही था। धार्मिक जीवन कैसा होता है, यह बात रामकृष्ण की संगति का लाभ होने पर जान पडी। "

स्वामी निर्वेदानन्द ने रामकृष्ण को हिन्दूधर्म की गंगा कहा है जो वैयक्तिक समाधि के कमंडलु में बंद थी। विवेकानंद इस गंगा के भगीरथ हुए और उन्होंने देवसरिता को रामकृष्ण के कमंडलु से निकालकर सारे विश्व में फैला दिया।

१९ वीं शती के उत्तरार्ध में जब प्रार्थना समाज, आर्य समाज और थियोसाफिस्ट के संतपुरुष अपने अपने सिद्धान्तों का निरूपण और योग्य प्रचार कर हिन्दुधर्म को शुद्ध और व्यवस्थित करने में व्यस्त थे उस समय श्रीमन् नृसिंहाचार्य और श्रीमन् नथ्थुराम शर्मा जैसे आचार्यों ने भारतीय संस्कृति और तत्त्वज्ञान का प्रचार किया था। श्रीमन् नृसिंहाचार्य जी वडोद के निवासी थे। उन्होंने " महाकाल " मासिक पत्रिका निकाली और उसमें भारतीय तत्त्वविद्या और योगशास्त्र की कलाओं को पूर्णरूप से समझाई, एवं भारतीय संस्कृति का यशोगान किया। उन्होंने अपने जीवन और कार्यों से जनता में शील, सदाचार, भक्ति, ज्ञान, प्रेम और तत्त्वज्ञान की भारतीय संस्कृति के अनुरूप सीख दी। उन्होंने श्रेयःसाधक अधिकारी वर्ग उत्पन्न किया। राज्य के अधिकारी लोग एवं शिक्षित वर्ग उनमें शामिल थे। उनका अपूर्ण कार्य उनके पुत्र उपेन्द्राचार्यजी ने पूरा किया। इस प्रकार पिता और पुत्र दोनों ने हिन्दू धर्म-कर्म की परंपरा को सजीवन की।

सौराष्ट्र में बीलखा नाम के गांव में नथ्थुराम शर्मा रहते थे। उन्होंने

इसी प्रकार का सांस्कृतिक चेतना का दिव्य कार्य किया । सामान्य जनता भी उनके ज्ञान को समझ सके, इसलिये उन्होंने वेदान्त और कर्मकाण्ड से संबंधित पुस्तकें लिखकर छपवाईं, जिससे साधारण मनुष्य भी उस ज्ञान से वंचित न रहे । शांकर वेदान्त और ब्राह्मणों के संध्यावंदनादि नित्यकर्म का समन्वय साधने का उन्होंने स्तुत्य प्रयास किया है । उन्होंने सगुण ब्रह्म के ज्ञान का उपदेश दे कर प्रतीति कराई कि " भक्ति की पवित्र भावना से और भक्ति करने से मनुष्य का अंतःकरण निर्मल और पवित्र बन जाता है । उसका अज्ञान दूर होता है और वह ज्ञानी बन जाता है ।

> " गुजरात की संस्कारिता प्रांतिक, स्थानिक या संकुचित नहीं है, गुजरात की संस्कारिता में ब्राह्मणत्व है, क्षत्रियत्व है, वैश्यत्व है । उसमें शुद्रभाव भी है । उसमें भारतीय तत्त्व है इतना ही नहीं परंतु उसमें विश्व-बंधुत्व के गुणों का भी आस्थावान वर्णन है । " [1]

निष्कर्ष :

पूर्ववर्ती पृष्ठों में आलोच्य युग की सांस्कृतिक परिस्थितियों का जो आकलन किया गया है वह देश के विविध भागों में चलनेवाले सांस्कृतिक अभियानों का परिचायक है । इस सम्पूर्ण अभियान के दो महत्त्वपूर्ण तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :-

(१) प्राचीन रूढ़िग्रस्त मान्यताओं का विरोध तथा प्राचीन धर्म, समाज, तथा नैतिक जीवन की मान्यताओं की युगानुरूप नयी व्याख्या प्रस्तुत करना । इस चेतना का आरंभ बंगाल से होता है और कालान्तर में वह पूरे देश में वह पूरे देश में फैल जाती है ।

(२) प्राचीन भारतीय परम्परा के प्रति प्रेम और गौरव की भावना जिसके कारण

१ संपा० रमणलाल परीख, गुजरात एक परिचय, पृ० १४५ अनूदित

यूरोपीय सभ्यता की चकाचौंध में यहां चिन्तक अपने आपको भ्रमित करने से बचे रहे ।

साहित्यिक परिस्थितियां – हिन्दी :

श्री जयशंकर प्रसाद के युग की पूर्वपीठिका के रूप में सर्व प्रथम भारतेन्दु युग पर विचार किया जा सकता है । इस युग के सब से अधिक प्रभावशाली साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे, जिन्होंने स्वयं साहित्य के क्षेत्र में क्रान्ति करने के साथ-साथ दूसरे साहित्यकारों का भी पथ-प्रदर्शन किया । उनके नाम के आधार पर इस युग को " भारतेन्दु-युग " कहा जाता है । इस युग में जनता के विचारों में परिवर्तन हुआ । यह प्राचीन आवरण में नवीन विचारों की कविता का युग था । भावानुभूति और सचाई को काव्य में स्थान दिया गया । काव्य रीतिकालीन एकनिष्ठ सता की अपेक्षा लोकनिष्ठ सता की ओर उन्मुख हुआ और कवियों का उत्तरदायित्व जनता के प्रति रहा । उदार राजनीतिक तथा सामाजिक विचारों से अभिनव काव्य का निर्माण हुआ और कविता जनता की वाणी बनी । जीवन और साहित्य का संबंध जोडा गया । कवि अपने काव्यों में प्रेम के गीतों की रचना के साथ साथ जनता की सामाजिक राजनीतिक तथा आर्थिक मनोदृष्टि की अभिव्यक्ति करते थे ।

भारतेन्दु ने साहित्य में नव जीवन का संचार किया । उनकी काव्य-दृष्टि उदार और व्यापक थी । उन्होंने विचारों में परिवर्तन करके हिन्दी साहित्य को समृद्धिशील बनाया । पुरानी कविता को अर्थहीन रूढियों से मुक्ति दी और समयानुकूल नवीन कविता की स्थापना की । साहित्य में नवजीवन का संचार किया । जनता में राजनीतिक चेतना जागृत की । देशवासियों के हृदय में आत्मसम्मान की भावना जागृत हुई । काव्य में नये गतिशील विचारों का समावेश हुआ । काव्य के वर्ण्य विषय – सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रहे । यह प्राचीन परम्परा तथा नवीन भावनाओं का संक्रांति काल का युग था ।

इस युग के कवियों ने भावाभिव्यक्ति के लिये परम्परा से चले आते हुए छंदों – कवित, सवैया, रोला, दोहा, छप्पय आदि के प्रयोग किये। साधारण जनता भिन्न भिन्न छन्दों में अपनी भावना व्यक्त कर लोक साहित्य की वृद्धि कर रही थी। " लावनी " का क्षेत्र अधिक व्यापक बना। काव्य में प्रांजलता, सरलता और सजीवता थी। कवियों ने प्रायः सरल ब्रजभाषा तथा मुक्तक शैली का ही प्रयोग अधिक किया।

कवियों का ध्यान भाषा की ओर न होकर नवीन भावना की ओर था अतः नवीन चेतना की जागृति ही इस युग की विशेषता है।

प्रसादजी की आरम्भिक कृतियां इसी परम्परा की देन है। भारतेन्दु के पश्चात् हिन्दी में सर्वप्रथम कविता की भाषा के स्थिरीकरण का आंदोलन हुआ जिसके प्रणेता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी थे।

द्विवेदीजी ने भाषा में परिवर्तन किया। पद्य की भाषा ब्रजभाषा से हटाकर खडी बोली रखी। खडी बोली के पद्य भाषा बन जाने से हिन्दी कविता में नूतन उत्थान का आरंभ होता है। द्विवेदीजी ने व्याकरण संमत मुहावरेदार भाषा तैयार की। कविता इतिवृत्तात्मक हो गई। काव्य में रस, भाव और सौंदर्य की त्रुटियां लक्षित होने लगी। काव्योपयुक्त भावना के स्थान पर बौद्धिक अंश की प्रधानता रही। इस युग के प्रमुख कवि मैथिलीशरणजी गुप्त थे। कवि ने राष्ट्रीय भावना से पूरित अनेक काव्य ग्रन्थ लिखे – भारत भारती, साकेत, यशोधरा आदि। इन्होंने बंगला की मधुर पदावली और अभिव्यंजना की नवीन प्रणाली का अपनी कविता में समावेश कर उनको विकसित किया। भाषा के लाक्षणिक प्रयोगों पर अधिक ध्यान दिया। मुक्तक गीत और अभिव्यक्ति की नवीन पद्धति के युग का प्रवर्तन किया गया। विषय की स्वच्छंदता के कारण कविता में विविधता तथा अनेकरूपता आई। कविताएं प्रायः वर्णनात्मक और आख्यानात्मक रहती थीं।

इस युग की कविता बाह्यार्थ निरूपिणी कविता थी, वह समय और परिस्थिति के सर्वथा अनुकूल थी । कवियों की मनोदृष्टि में विकास और परिवर्तन, गंभीर अनुभूति और सचाई थे । उनकी प्रवृत्ति विश्लेषणात्मक थी । द्विवेदीजी ने खडीबोली को लोकप्रिय बनाया और नवीन भावों और विचारों की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बनने की क्षमता प्रदान की । अभिव्यंजना के नवीन माध्यम को अपना कर उसका विकास किया । कवियों ने हिन्दी, संस्कृत और उर्दू के छन्दों में सफलतापूर्वक निर्वाह किया । कवि खडी बोली के सुधार और विकास में व्यस्त थे । अनुप्रास और स्वरमैत्री द्वारा रचनाओं में संगीतात्मकता लाने का प्रयास किया गया । कवि अपने उद्देश्य में पूर्णतया सफल हुए । खडीबोली को सजा कर साधन संपन्न बनाया । काव्य भाषा का यथाशक्ति विकास कर तृतीय उत्थान के कवियों को सौंदर्यपूर्ण अभिव्यंजना प्रणाली की साधना के लिए स्वतंत्र कर दिया ।

नवीन भाषा वाला द्वितीय उत्थान, नवीन विचारोंवाले प्रथम उत्थान और नवीन शैलीवाले तृतीय उत्थान को जोडनेवाली कडी है ।[1] तृतीय उत्थान छायावाद युग के नाम से प्रसिद्ध है और इसके प्रमुख प्रणेता है जयंशकर प्रसाद । अतः छायावाद युग पर किंचित् विस्तार से विचार किया जा रहा है ।

छायावाद युग – सन् १९२० से १९३७ ई०ः

छायावाद कोई नवीन वस्तु नहीं है । हमारे प्राचीन काव्यों में भी छायावाद की झलक मिलती है । वेदों के द्वारा दिया गया ऊषा तथा संध्या का जो सूक्ष्म एवं व्यापक वर्णन है, उसे हम छायावाद के रूप में ग्रहण कर सकते हैं । सन् १९०९ ई० से छायावाद का विकास आरंभ हुआ ; क्योंकि " प्रसाद " के " कानन कुसुम " और मासिक पत्र " इन्दु " ने खडी बोली की कविता में एक नवीन धारा का सूत्रपात किया था । इसी धारा को छायावाद नाम दिया गया । इसका पूरा

१ डा० केसरी नारायण शुक्ल, आधुनिक काव्य धारा पृ. १९१

विस्तृत वर्णन अध्याय पांच अभिव्यक्ति पक्ष (कला पक्ष) के अंतर्गत किया जायगा । पुनरावृत्ति दोष न हो इसलिए यहां संकेत मात्र दिया गया है -

> " छायावाद द्विवेदी युग के नीति-प्रधान, शुष्क, इतिवृतात्मक तथा रीतिकालीन रूढिग्रस्त और अतिऐन्द्रियिक विलास प्रिय काव्य के विरुद्ध एक सच्चि सजीव प्रतिक्रिया थी । " [1]

छायावाद में प्रकृति का प्रेम, नारी का सौंदर्य प्रेमी का विरह और कथनशैली की नूतनता - ये सभी तत्त्व विद्यमान हैं । अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों - वर्ड्सवर्थ, कीट्स, शेली, बायरन आदि का भी छायावादी कवियों पर प्रभाव पडा है । अंग्रेजी में जो रोमैन्टिसिजम् या स्वच्छन्दतावाद है ; वहीं हिन्दी में छायावाद है ।

छायावाद की भावना में वही मूल तत्त्व है ; जो वर्तमान काव्य का सृजन करते हैं यथा - प्रेम, सौंदर्य और करुणा ।

छायावादी कवितायें अन्तर्मुखी एवं आत्मगत होती हैं । इनमें भावनात्मक दृष्टिकोण की विशेष प्रधानता रहती है । कवि आत्मलीन और अंतरंग में रमता है । कवि प्राकृतिक सौंदर्य के साथ सामंजस्य करता है ; और उसे जीवित रूप में मान कर उसका मानवीकरण करता है । कवि प्रकृति से अविच्छिन्न संबंध बांधता है । कवि को प्रकृति महिमाशालिनी प्रतीत होती है । प्रकृति का कण कण कवि को सजीव लगता है ।

डा० नगेन्द्र का कहना है कि " छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव पद्धति है । जीवन के प्रति एक भावनात्मक दृष्टिकोण है । इसमें प्रवृत्ति अन्तर्मुखी व वायवी होती है ; और अभिव्यक्ति प्रतीकों द्वारा होती है ।"

१ डा० केसरी नारायण शुक्ल, आधुनिक काव्य धारा

THE M. S. UNIVERSITY OF BARODA
SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

छायावाद काव्य में छन्दों के विषय में भी क्रान्ति हुई। नवीन संस्कृत छंदों का प्रयोग हुआ। अभिव्यंजना को सफल करने के लिए किसी भी चरण की मात्राओं को घटाने-बढ़ाने की स्वतंत्रता बढ़ती गई। बंगला से प्रभावित छंदों का प्रयोग हुआ। तुकान्त छंदों के कई नये भेदों का प्रयोग हुआ; मुक्त छंद में रचनाओं की प्रवृत्ति स्थापित हुई। सारा छायावाद-काव्य गीतों और गेय कविताओं के रूप में प्राप्त होता है।

छायावाद में अनुभूति एवं अभिव्यक्ति संबंधी निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं:-

(१) सौन्दर्य-दर्शन
(२) शृंगारिकता
(३) स्वानुभूत सुख-दुःख की विवृत्ति
(४) प्रकृति पर चेतनता का आरोप
(५) आध्यात्मिकता
(६) नारी की महत्ता
(७) मानवता की विवृत्ति
(८) अभिव्यंजना की अनूठी पद्धति -
लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, उपचार वक्रता, ध्वन्यात्मकता, चित्रभाषा, नये-नये अलंकारों के प्रयोग इत्यादि।[1]

साहित्यिक परिस्थितियाँ - गुजराती :

अर्वाचीन गुजराती कविता का प्रथम भाग, कवीश्वर दलपतराम की नई शैली की काव्य कृति " बापानी पीपर " सन् १८४५ में लिखी गई; वहां से माना

१ डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० १३६

जाता है । सन् १८८५ में बालाशंकर ने " क्लान्त कवि " काव्य शीर्षक से कविता लिखी । कवीश्वर दलपतराम वैसे १८९७ तक कवि कर्म करते रहे ; लेकिन उनका काव्य-सर्जन इतिवृतात्मक और निष्प्राण है । दलपत ने सन् १८८१ में मांगलिक गीतावलि काव्य लिखा । इसके बाद उनके काव्य विकास का पूर्ण विराम ही माना जाता है । लेकिन जब तक कोई दूसरी शैली का आविर्भाव नहीं था, वही शैली और उसका प्रभाव मान्य किया गया । इस प्रकार प्रथम भाग की मर्यादा सन् १८४५ से १८८४ तक मानी जाती है । इस चालीस वर्ष की सीमा में छोटे बड़े प्रायः सौ जितने लेखकों की छोटी-बड़ी तीन सौ जितनी पद्य पुस्तकें प्राप्त होती है । इस समय में लोगों की अभिरुचि कविता के प्रति विशेष थी और सामान्य मनुष्य भी काव्य बना कर या सुन कर उसका रसास्वाद लेता था । भावार्थ यह कि साधारण जन रुचि काव्य के प्रति अग्रसर थी ।

इन सौ जितने कवियों में से आधे कवियों की कविताएं तो सिर्फ तुकबंदी और निष्प्राण थी । बाकी बचे हुए कवियों का श्रेणी विभाजन इस प्रकार माना जाता है - (१) मौलिक प्रतिभा वाले काव्य सर्जन करनेवाले (२) मौलिक प्रतिभाशाली कवियों का अनुसरण करनेवाले (३) अपनी छोटी टूटी फूटी कविता की रचना करके आनंद प्राप्त करनेवाले । इसके सिवाय चौथा एक गौण वर्ग था जो पारसी बोली में लिखनेवाला पारसी लेखकों का वर्ग माना जाता है ।

विकास के द्वितीय सोपान में आकर कविता अधिक गहन और व्यापक बनी । उसके कलातत्त्व में भी गहराई और व्यापकता आ गई । इसमें पूर्ववर्ती विभाग की तरह उत्साह और उपासना भी विद्यमान है । इस विभाग का काव्य प्रवाह प्रेम, सौंदर्य और रस के प्रति अग्रसर है । इसमें काव्य-कला के मर्मस्थ तत्त्वों की भी झांकी होने लगी है । इस प्रकार कवि और भावक दोनों का अनुशीलन व्यापक और समृद्ध भूमिका पर पहुंचा है ।[१]

---

१ श्री " सुंदरम् " अर्वाचीन कविता, पृ० १४५ अनूदित

युनिवर्सिटी शिक्षा व्यवस्था के कारण जनता के मन में शिक्षण और साहित्य के प्रति जागृति उत्पन्न हुई। युवक वर्ग ने अभ्यासशील प्रवृत्ति अपनाई और मातृभाषा के साथ साथ वे संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी साहित्य से भी समृद्ध बने ; फलतः इस खंड की कविता तुलनात्मक भाषा वैभव के कारण उच्च कक्षा पर पहुंच गई। इस प्रकार युनिवर्सिटी शिक्षा के कारण संस्कृत, अंग्रेजी, और फारसी तीनों भाषाओं के प्रभाव से गुजराती काव्य की श्रीवृद्धि हुई।

इसके साथ ही फारसी साहित्य के प्रभाव से गुजराती काव्य ने " गज़ल " और सूफीवाद के तत्त्व अपनाये लेकिन गुजरात के प्रभावशाली कवि फारसी साहित्य के संपर्क में अधिक न रह सकने के कारण उसकी अधिक असर नहीं हुई। कवियों का और जनता का झुकाव अंग्रेजी और संस्कृत के प्रति था। फारसी का महत्त्वपूर्ण प्रभाव सन् १९३० में " पतील " कवि के काव्यों में लक्षित होता है। फारसी भाषा के छंद पदावली या शैली गुजराती भाषा में विविधता के कारण घुलमिल नहीं सके।

तीसरा उल्लेखनीय तथ्य यह है कि संस्कृत भाषा और काव्य का गहरा प्रभाव गुजराती भाषा और काव्य पर पड़ा। गुजराती भाषा ने तत्त्वज्ञान, काव्य सिद्धान्त, रस, सौन्दर्य, आदि का सम्यक् ज्ञान संस्कृत भाषा में से ही प्राप्त किया और वह वैभवशालिनी संस्कृत के प्रभाव से ही बनी। अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों के तत्त्व पूर्ण रूप से संस्कृत भाषा में से प्राप्त कर गुजराती साहित्य समृद्ध बना।

चौथे अंग्रेजी भाषा का प्रभाव सन् १९२० के बाद लक्षित होता है और वह भी शैली की लाक्षणिकता के कारण। इसी के ब्लन्क-वर्स के समान कवि न्हानालाल ने डोलन शैली अपनाई। सारांश यह है कि अंग्रेजी की असर अभिव्यक्ति क्षेत्र में भी हुई।

पंचमइस खंड में कविओं ने लोकवानी का और लोक साहित्य का उपयोग

भी अपने काव्यों में किया ऐसा माना जाता है ।

इस खंड में कवियों ने दलपत शैली की ही काव्य रचना की है लेकिन भाव गांभीर्य और काव्य प्रतिभा पूर्ववर्ती खंड से अनेक अंशों में अधिक है । कई विद्वद्जन गुजराती काव्य का नया मोड, नया प्रस्थान नरसिंहराव की " कुसुममाला " सन् १८८७ से मानते हैं लेकिन " सुंदरम् " जी का यह कहना है कि सन् १८८५ में कवि बालाशंकर लिखित " क्लान्त कवि " काव्य नये मोड या नये प्रस्थान का द्योतक है । वे यह भी मानते हैं कि " क्लान्त कवि " सर्वगुण पूर्ण कृति नहीं है ; फिर भी उस समय की अन्य कृतिओं से वह अधिक समृद्ध है ।

इस खंड के कवि दो प्रकार के हैं । प्रथम कोटि में बालाशंकर, मणिलाल, नभुभाई, कलापी, त्रिभोवन, प्रेमशंकर और सागर आदि आते हैं । ये कवि मित्र भाव से, गुरु शिष्य भाव से अथवा अमुक भावना साम्य से एक दूसरे से संबंधित है । फिर भी हरेक की अपनी अपनी विशिष्टताएं और लाक्षणिकताएं भी हैं । इन कवियों की कविताएं भावसुरभित, तमन्ना और अनुभव की सचाई लिये हुए और अंतर के ~~गहनतम~~ गहनतम मंथन से लिखी हुई काव्य कृतियां हैं । ऐसी आंतरिक खोज " कान्त " कवि में भी प्राप्त होती है ; लेकिन उनका काव्य रूप भिन्न होने से इनके अंतर्गत नहीं लिये हैं । हरिलाल ध्रुव में एक प्रकार की जीवन मस्ती है, लेकिन जीवन की गहनता उनके काव्य में प्रस्फुटित नहीं होती ।[१] द्वितीय, संस्कृत की परम्परा से प्रभावित कवियों की है ; जिनमें से प्रमुख नाम इस प्रकार हैं :- दौलतराम पंड्या, भीमराव दिवेटीआ, गोवर्धनराम त्रिपाठी, हरिलाल ध्रुव, " मकरंद " – रमणभाई नीलकंठ, नरसिंहराव दीवेटीआ, " कान्त " – मणिशंकर भट्ट, " प्रेमभक्ति " – न्हानालाल कवि, " अदल " अरदेशर खबरदार, " सेहेनी " बळवंतराय ठाकोर ।

इस खंड की प्रधान काव्य प्रवृत्ति यह है कि ये कवि प्रथम खण्ड के कवियों

००००००००००००००००००

१ " सुंदरम् " – अर्वाचीन कविता, पृ० १५४ अनूदित

से अधिक प्रतिभाशाली, वैयक्तिक, कला तत्त्व को लिए हुए, मौलिक, सौंदर्य-परक रचनाएं करनेवाले और स्वायत्त प्रतिष्ठावाले कवि थे ।

तृतीय उत्थान - सन् १९३१ से माना जाता है :

यह खंड प्रफुल्ल सर्जनात्मक उन्मेष का युग है । प्रथम और द्वितीय खंड की समृद्धि और तात्त्विक विकास को पचा कर इसका विकास हुआ है । इस खंड में दो प्रवाह समान रूप से गतिशील है ; दूसरे खंड का प्रवाह और उसीके साथ तीसरे खंड का प्रवाह । सन् १९२७ से १९३१ तक कविता में नये अंकुरों का जन्म हुआ ; और कविता का मुख्य विषय रस और सौन्दर्य ही रहा । इस युग के प्रगतिशील चार मुख्य कवि माने गये हैं ; नरसिंहराव, न्हानालाल, खबरदार और बलवंतराय । इनमें काव्य के उच्चतम बिन्दु पर न्हानालाल स्थित थे । उनकी मौलिक सर्जनात्मक शक्ति और शैली में आमूल परिवर्तन के कारण उनकी ख्याति उत्तरोत्तर बढ़ती गई । उनका सन् १९२७ में और खबरदार का सन् १९३१ में सुवर्णमहोत्सव मनाया गया ।

गांधीजी ने सन् १९२२ में बारडोली में सत्याग्रह किया और असहकार की हलचल पैदा की जिसके फलस्वरूप देश में राष्ट्रव्यापी जागृति आ गई (सन् १९२०-२१)। इससे गुजरात की अस्मिता अधिक तीव्र बनी । दासता में पची हुई जनता में जोश जागृत हुआ । प्रजा में पुनर्जीवन आ गया । श्री बालाशंकर और हरिलाल ध्रुव ने स्थानिक स्वराज्य का स्वागत किया । नर्मद, खबरदार और न्हानालाल ने वीर रस पूर्ण काव्य रचनाएं की " साचना सिपाई अमा क्यां " । इस उत्थान में राजभक्ति का अस्त हुआ और देशभक्ति का प्राबल्य बढ़ा ; जिसके फलस्वरूप वीर रस पूर्ण और जोशीली कविताएं लिखी गयीं । इस श्रेणी में कवि न्हानालाल अद्वितीय ठहरते हैं । उन्होंने राष्ट्रीय भावनापरक " गुजरातनो तपस्वी " काव्य लिखा और गांधीजी एवं कस्तुर बा की भूरि भूरि प्रशंसा की, जिसे पढ़ कर जनता में राष्ट्रीय जागृति की तीव्र भावना विकसी । सन् १९३० में " सिंधुडो ", " विश्वशान्ति ", " बुद्धनां चक्षु ",

" हरिनां लोचनियां " जैसी उत्कृष्ट भावपरक रचनाएं हुईं । गुजरात की कविता गुजरात की मर्यादा से बाहर निकलकर पूरे विश्व और मानवजात को निरखने लगी, सारांश यह है कि संकुचितता की जगह विशालता क्रम क्रम से आने लगी । जनता के जीवन में साहित्य के प्रभाव से सर्वव्यापी जागरनकता आ गई । साहित्य के मुख्य उपकरण ये रहे :-

" स्वतंत्रता, नवनिर्माण, प्रकाश, ज्ञान, समता, सर्वभूतहित, बंधुत्व, मानव प्रेम, जनकल्याण, जनसेवा त्याग, बलिदान, समर्पण " इन सब तत्त्वों की भावानात्मक सृष्टि हुई और उनको सिद्ध करने के रचनात्मक प्रयास हुए ।[1] युवक वर्ग " कुछ करना चाहिए, कुछ बनना चाहिए " इन सूत्रों से आशान्वित हुआ ।

अन्य भाषाओं के साथ संबंध :

गुजराती साहित्यकारों का परिचय अन्य भाषाओं के साथ भी अत्यंत गाढ बना - संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू । अंग्रेजी में टी० एस० इलियट की रचनाओं के प्रभाव से जनता में बानी की निराडंबरता, सहजता, सरलता, मिथ्या शिष्टता के भावणों का त्याग, जीवन के नये क्षेत्रों के प्रति अभिमुखता आदि वृत्तियां और प्रवृत्तियां जागृत हुईं । मनुष्य की सरल, सहज और मौलिक बानी में कला की नवीनता का उन्मेष पाया गया ।[2] इस प्रकार टी० एस० इलियट के साहित्य ने जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण बतलाया जो सरलता और मौलिकता संजोये हुए था । संस्कृत साहित्य के परिचय से और प्रभाव से सालंकृतता, प्रासादिकता और निर्व्याज सुंदरता का प्रतिष्ठापन हुआ । इसके साथ साथ हिन्दी, बंगाली और उर्दू भाषा का भी प्रभाव गुजराती भाषा पर पडा । हिन्दी और उर्दू के प्रभाव से नवीन अर्थवाहकता और व्यंजकता का क्रमशः उन्मेष हुआ । इतर भाषाओं के साहित्य का उपयोग करके

१ अर्वाचीन कविता, " सुंदरम् ", पृ० ४५८, अनूदित

२ वही

गुजराती कविता अधिक समृद्ध बनी । कवि भालण की " कादंबरी " से प्रारंभ होकर न्हानालाल का " इन्दुकुमार " और बळवंतराय ठाकोर की " भणकार " पर्यंत की अद्यतन कविता गहरा अध्ययन और विवेचन का विषय बनी । प्राचीन कविता में से लोकवानी का घरेलू माधुर्य, गीतों की मधुर तर्ज (लहक) और नया अर्थ सौन्दर्य प्राप्त किया । इतना विकास होते हुए भी " महाकाव्य " का अभ्यास और अध्ययन दृढमूल नहीं बन पाया है । न्हानालाल का " कुरुक्षेत्र " लेखक स्वयं " महाकाव्य " मानता है जिसके सबल कारण परवर्ती अध्याय में दिये हैं, लेकिन गुजराती का प्रतिभाशाली विद्वत्वर्ग उसे " महाकाव्य " नहीं मानता है । नवीन कविता को प्रभावोत्पादक बनानेवाले ये चार महारथी थे –

" बाळाशंकर, कान्त, न्हानालाल और बळवंतराय "

नई कविता के मुख्य उपकरण – जीवन की अनेकविध परिस्थितियाँ, अनेक प्रकार से फिर भी समान रूप से, कला-क्षमता से निरूपित कर सके ऐसी वाणी और जो छंद, शैली आदि की आवश्यकता थी वह न्हानालाल ने और उनसे भी विशेष बळवंतराय के काव्यों में से प्राप्त हुए । न्हानालाल के काव्यों में उर्मिलता, वाक्छटा, वाणी के विविध मधुर रूप संपन्न आविर्भाव, अर्थवाहकता, और नवीन कलाक्षमता है ।

सन् १९२३ में नवीन कविता के द्योतक तत्त्वोंवाले [१] दो कवि " शेष " और गजेन्द्र बुच की कृतियाँ " नर्मदाने आरे " और " स्मशाने " प्राप्त होती है । शेष की काव्यकृति में भावनिरूपण की सघन मूर्त शैली है । गजेन्द्र की कृति में नवीन रसभर अर्थवाहक पदावलि है । शेष की अन्य लाक्षणिक कृतियाँ " प्रभु जीवन दे ", " प्रार्थना ", सिन्धुनुं आमंत्रण सन् १९२६ तक लिखी गई मानी जाती है, लेकिन उनकी काव्यकला सन् १९३४ के बाद पूर्ण विकसित हुई है । गजेन्द्र का निधन होने से सन् १९२७ में उनकी कविता का भी अंत हो गया । इसके सिवाय अन्य प्रभावशाली कवियों

१ " सुन्दरम् " अर्वाचीन कविता, पृ० ४५१, अनूदित

के नाम उल्लेखनीय है, यथा --

चन्द्रवदन महेता, स्नेश रश्मि, मनसुखलाल, श्रीधरणी, मेघाणी, त्रिभुवन व्यास, " सुन्दरम् " ये अपने अलौकिक व्यक्तित्व और काव्य कला की सजधज से काव्य क्षेत्र में उतरे । सन् १९२२ के पश्चात् नवीन कविता का सर्जन अधिक विपुलता से होने लगा । कवि और जनता ने दूसरे उत्थान से अधिक विकास साधा था । सानेट, युद्धगीत, बालगीतो आदि भी लिखे गये । कविता जन सामान्य की रुचि की कविता बनी और गेय और पाठ्य दोनों प्रकार की लिखी गई । उर्दू के प्रभाव के कारण उर्दू शैली की गजलें भी लिखी गई, तदुपरांत अलौकिक व्यक्तित्व वाली रचनाएं भी प्राप्त होती है ।

" नवीन युग को प्रेम, सौन्दर्य, शान्ति और सर्वजनहित की तीव्र चाहना थी और उनकी साहित्यिक आकांक्षाएं अधिक गंभीर वास्तविकता पर और साथ साथ निरामय विशुद्ध सत्य पर प्रतिष्ठित थी । कवियों की वास्तविकता की पहचान के साथ विराट का आदर्श के प्रति गति थी । नवीन कवि भी प्रकृति का और मानव का निरूपण करने लगा । समन्वय की खोज, सत्य की अतल क्षुधा, पुरुषार्थ का निःसीम गांभीर्य, जीवन के संपूर्ण तत्त्वों को स्थूल सूक्ष्म आविर्भावों को समजने का प्रयास करती, व्यापक परामर्शक बुद्धि, वास्तविकता और रंगदर्शिता इन दोनों की समान अनुभूति और आराधना, ऐसे ऐसे दिव्य तत्त्वों से नई कविता का प्राण सर्जन हुआ । यद्यपि यह अभिव्यक्ति उत्तमोत्तम कक्षा की नहीं है, लेकिन उसके लिये जो तीव्र लगन है वह प्रथम और द्वितीय उत्थान से विशाल और गहन है । "[1]

" नई कविता सन् १९२२ से नवीन प्रकार से जीवन के प्रति अभिमुख होने लगी । अनेक विषय, विविध शैलियां, लोकवानी से लेकर शिष्ट संस्कृत शैली तक का प्रकार के वाणी प्रकारों का उपयोग करके गहरी आदर्श परायणता, गहन गंभीरता

---

१ " सुन्दरम् " , अर्वाचीन कविता, पृ० ४७९ अनूदित

अपितु बाल सहज सरलता, धारण करती, जीवन की वास्तविकता और सूक्ष्म रहस्य-मयता दोनों का स्वीकार करती नवीन कविता ने परवर्ती दस वर्षों में प्रशंस्य ऐसे विविध आविर्भाव साधे थे, लेकिन इन सब उपकरणों का एकीकरण किसी एक कवि में प्राप्त नहीं होता है। यह घटा सन् १९३३ में जब " सुन्दरम् " की दो काव्य रचनाएं " कडवी वाणी " और " काव्य-मंगला " की रचना हुई। इस प्रकार नई कविता अपने सूक्ष्म और स्थूल उभयविध स्वरूपों का विशिष्ट व्यक्तित्व प्रकट करती करती अर्वाचीन कविता में अपना कलाकलाप विस्तृत करने लगी। "[1]

" नई कविता, नये युग के विकसित मानस की कविता है। नवीन कवि को अपना दृष्टिवर्तुल केवल हिन्द पर्यंत ही नहीं लेकिन जगत् व्यापी विचारशीलता की भूमिका तक व्यापक बनाना है। उसे वेदकाल से प्रचलित अद्यापि पर्यंत नवीनतम आविर्भावों को समजने हैं। हिन्द की पुरानी संस्कृति और आधुनिक युग की बौद्धिकता दोनों में सामंजस्य स्थापित करना है और मानव के भावि विकास की सत्य प्रतिष्ठित झांकी करनी है। "[2]

गुजराती साहित्य परिषद :

प्रथम गुजराती साहित्य परिषद अहमदाबाद में सन् १९०५; द्वितीय सन् १९०७ में ; तृतीय १९०९ में राजकोट ; चतुर्थ १९१२ में वडौदा ; पंचम १९१५ सूरत ; षष्ठ अहमदाबाद; सप्तम् भावनगर ; अष्टम् बम्बई और नवम् नडियाद में मिली थी। " साहित्य " मासिक का प्रारंभ - सन् १९१२। गुजरात एज्युकेशन सोसाइटी की स्थापना सन् १९१३। सार्वजनिक एज्युकेशन सोसाइटी की स्थापना - सूरत सन् १९१४, चरोतर एज्युकेशन सोसाइटी की स्थापना - आणंद सन्, १९१६।

प्रथम गुजरात शिक्षा परिषद् - अहमदाबाद - सन् १९१६। द्वितीय

१ " सुन्दरम् ", अर्वाचीन कविता, पृ० ४६८ अनूदित

२ वही, पृ० ४८५ अनूदित

गुजरात शिक्षा परिषद – मरनच, सन् १९१७ ।
सन् १९१९ " नवजीवन " – साप्ताहिक तंत्री – महात्मा गांधी
सन् १९३३ – नर्मद शताब्दि

इस प्रकार साहित्यिक गतिविधि का संक्षिप्त परिचय दिया गया है ।

सारांश यह है कि गुजराती साहित्य क्रम क्रम से वैयक्तिक जीवन से दूर हो कर जन जीवन का और सर्व जन हितायका साहित्य बना । सामाजिक, राष्ट्रीय भावनाएं और विश्वबंधुत्व का शिलान्यास इन कविताओं में यत्र तत्र लक्षित होता है ।

निष्कर्ष :

पूर्ववर्ती पृष्ठों में आलोच्य युग की अलग अलग — हिन्दी, गुजराती की साहित्यिक परिस्थितियों का आकलन किया गया है । हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं की साहित्यिक परिस्थितियां भिन्न भिन्न होते हुए भी कहीं कहीं समानता प्राप्त होती है । वे इस प्रकार है :-

हिन्दी साहित्य में जैसे भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद युग माना जाता है, गुजराती साहित्य में भी नर्मदयुग, पंडितयुग, न्हानालाल युग अथवा प्रथम उत्थान, द्वितीय उत्थान और तृतीय उत्थान माना जाता है । ये उत्थान या युग गणित के सिद्धान्तों की तरह दृढ नहीं होते लेकिन उनमें पर्याप्त समानता है । जैसे –

भारतेन्दु युग	सन् १८५७ से १९०० (लगभग)	हिन्दी साहित्य
द्विवेदी युग	सन् १९०० से १९२० (लगभग)	
छायावाद युग	सन् १९२० से १९३७ (लगभग)	

प्रथम उत्थान्	सन् १८४५ से १८८४ (लगभग)	गुजराती साहित्य
द्वितीय उत्थान्	सन् १८८५ से १९२० (लगभग)	
तृतीय उत्थान्	सन् १९३० से --	

दो स्थानों की साहित्यिक परिस्थितियां भिन्न होते हुए भी दोनों कवियों की भावनाओं में साम्य प्रतीत होता है जो परवर्ती अध्याय का विषय है। तत्कालीन परिस्थितियों को लक्ष्य करके ही साहित्यिक परिस्थितियों का और उससे साहित्य का सृजन होता है, इसलिये साहित्यिक परिस्थितियों में वैषम्य होते हुए भी साहित्य में साम्य लक्षित होता है। दोनों भी कवि अपनी पूर्वकालीन साहित्यिक परिस्थिति से प्रभावित थे, प्रसादजी, भारतेन्दुजी की साहित्यिक परिस्थिति से और न्हानालाल, नर्मद और दलपत की साहित्यिक परिस्थिति से। सारांश यह है कि दोनों की साहित्यिक प्रवृत्तियां समान थीं जैसे, प्रेम, सौंदर्य, भक्ति, वीरता, शौर्य, मानवता, करुणा, दया आदि उपकरण दोनों की साहित्यिक कृतियों में पर्याप्त रूप से मिलते हैं।

००००००